ऋत वाणी

(पत्र लेख एवं व्याख्यान)

द्वितीय चयन

लेखक

रामचन्द्र

श्री रामचन्द्र मिशन

शाहजहाँपुर

पंचम संस्करण : अप्रैल १९९०   १००० प्रतियाँ

[मूल अंग्रेजी पुस्तक "वॉयस रीयल (सेकंड सेलेकशन)" से अनूदित]

अनुवादक
गोपीकृष्ण मणियार

© श्री रामचन्द्र मिशन, १९९०
I. S. B. N. 81 85177 36 8

मूल्य : पच्चीस रुपया

पुस्तक मिलने का पता :
श्री रामचंद्र मिशन (इलाहाबाद केन्द्र)
C-६४४, गुरु तेग बहादुर नगर
इलाहाबाद-२११०१६ (उ० प्र०)

मुद्रक : शाकुन्तल मुद्रणालय
३४, बलरामपुर हाउस, इलाहाबाद

प्रकाशक की ओर से

समर्थ गुरु महात्मा श्री रामचन्द्र जी महाराज (शाहजहाँपुर) विलक्षण प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति थे। इस पृथ्वी पर उनका अवतरण आत्मानुभूति के लिये लालायित मानव को आत्म-साक्षात्कार कराने के लिये ही हुआ था। उन्होंने जन-साधारण के अभ्यास के लिये एक सीधी और स्वाभाविक पद्धति—'सहज मार्ग'—बतायी जो ईश्वर-प्राप्ति के लिये अचूक साधन है। आपने अनेक प्रशिक्षक भी तैयार किये जिनके माध्यम से दैवी अनुग्रह सीधे अभ्यासी के हृदय में आरोपित किया जाता है।

अपने जीवन काल में गुरुदेव ने अभ्यासियों तथा प्रशिक्षकों को, अभ्यास-पद्धति की बारीकियों और उनकी कठिनाइयों को समझाते हुए, अनेक पत्र लिखे। साथ ही मिशन के उत्सवों पर व्याख्यान भी दिये और समय समय पर लेख भी लिखे। इनमें से चयन करके दो संकलन अंग्रेजी में 'वायस रीयल' के नाम से निकले थे। प्रथम चयन का हिन्दी अनुवाद १९८२ में छपा था। अब द्वितीय चयन का अनुवाद पाठकों के सामने है। यह

अनुवाद श्री गोपीकृष्ण मणियार ने बड़ी लगन से किया है, जिसके लिये हम उनके आभारी हैं। अनुवाद के अवलोकन और परिष्कृति में हमें श्री रमेशचन्द्र मालवीय से बहुत सहायता मिली है। हम उनके भी आभारी हैं। गुरुदेव की प्रेरणा से कहीं कहीं मैंने भी कलम चला दी है।

चंद्रिका प्रसाद

अप्रैल, १९९०　　　श्री रामचन्द्र मिशन, इलाहाबाद केन्द्र

अंतर्वस्तु

पृष्ठ

भाग १ : मेरे गुरुदेव का मिशन

प्रथम संदेश	३
मेरे गुरुदेव का मिशन	१०
दक्षिण भारत के लोगों को अध्यक्ष का प्रथम संदेश	१७
सहज मार्ग पद्धति	२०
ईश्वरानुभव का सबसे आसान रास्ता	२८
सहज मार्ग की दिव्यता	३२

भाग २ : भिक्षुक का भिक्षा-पात्र

एक फ़कीर की दौलत	४१
हलके चलो	४२
स्मरण	४४
आनंदम	५१
ध्येय और मार्ग	५३
सती	५७
हमारी असली प्रकृति	६३
गीता	७०

लगाव और श्रद्धा ७८
आत्म-साक्षात्कार की अवस्था ८२
दिव्य-दृष्टि ९१
हृदय पर ध्यान ९४
मन का नियंत्रण ९८
प्रकृति की कार्यशाला १०२
सहज मार्ग—एक गतिशील मार्ग ११०
आदर्श और कमियाँ ११७
आध्यात्मिक प्रगति १२२
अध्यात्म मार्ग में प्रगति १२७
प्राणाहुति के माध्यम से आध्यात्मिक प्रशिक्षण १३२
अमोघ पथ १३६
जिज्ञासु के लिए संकेत १४०
समस्या : उसका समाधान १४६
तकलीफ—उसका प्रारम्भ और अंत १५१
कम्पन, ध्वनि और प्रतीक १५४
गुरुओं और शिष्यों की किस्में १६२
पदार्थ की असलियत १६७
भाग ३ : अमृतमयी वर्षा
अमृतमयी वर्षा १७५

• •

भाग १

मेरे गुरुदेव का मिशन

"इस प्रकार अपने गुरुदेव के प्रतिनिधि के रूप में मुझ पर प्रकट की गई उनकी इच्छा के अनुसार, मानव-जाति के आध्यात्मिक पुनरुद्धार और उत्कंठित आत्माओं की मुक्ति के लिए मिशन की स्थापना की गई है और वर्तमान काल की आवश्यकता को पूरी करने के लिए सहज मार्ग नाम की एक नई पद्धति प्रवर्तित की गई है।"

प्रथम संदेश

प्यारे भाइयों,

मैने अपने जीवन का अधिकांश भाग सतत स्मरण में लगाया है। मैं बाईस वर्ष का था जब मैं अपने गुरुदेव, फतेहगढ़ के समर्थ गुरु महात्मा रामचन्द्र जी महाराज के श्री चरणों में पहुँचा, जिन्होंने अपनी कृपा और स्नेह के आँचल में मुझे पाला। मेरा एकमात्र उद्‌देश्य और जीवन की मुख्य साधना सदा अपने गुरु की भक्ति-पूर्ण आराधना रही है और यही आरंभ से अंत तक (अर्थात् आज तक) चालू है। मैंने उनको पूजा के पात्र के रूप में अपने हृदय में प्रतिष्ठित किया और अन्य किसी को अपने ध्यान में न मैं पहले लाया न अब लाता हूँ। भगवान मेरी यह भावना सदा बनायें रखे। गुरुदेव को छोड़कर किसी अन्य को मैने नहीं अपनाया और न मैने कभी और किसी का आसरा देखा। सच्चे शिष्य का यही प्राथमिक कर्तव्य है और यही सफलता की एकमात्र कुंजी है। यही एकमात्र साधन है जो हृदय से मलिनता को हटाने और मार्ग की बाधाओं को पार करने में सहायक है। इससे ग्रंथियों का विमोचन होता है। वस्तुतः यह सभी साधनाओं का सच्चा सार है। जिसने एक बार इसे चख लिया, वह जीवन भर कभी इससे विलग न होगा, न किसी अन्य ओर झुकेगा। यही वह अचूक प्रक्रिया

है जिसका अनुसरण मेरे श्रद्धेय गुरुदेव ने और सभी प्रतिष्ठित संतों ने किया। मेरे लिये तो यह प्रक्रिया मेरी दिनचर्या के सभी कामों के दौरान मेरे हृदय में स्वतः चलती रही और यह स्थायी रूप से मेरी आदत बन गयी। संक्षेप में, यह मेरे जीवन का आधार ही थी। इसने मेरे आध्यात्मिक उत्कर्ष की वर्तमान स्थिति तक की सारी मंजिलें पार करने में मदद की। इसलिये अपने जीवन के अनुभव के आधार पर मैं इस बात की दृढ़तापूर्वक पुष्टि करता हूँ कि यही एक मात्र विधि है जो अचूक परिणाम देती है और गुरुदेव की पूरी मदद और सहारे की गारंटी देती है। मैं चाहता हूँ कि आप सब इसके गहरे प्रभाव का व्यावहारिक अनुभव प्राप्त करें। जो इस विधि को अपनाना चाहते हैं वे इसका ब्योरा खुद मिल कर पूछ सकते हैं। इसकी कई अवस्थायें हैं। जब अभ्यासी एक अवस्था को पार कर ले, तब अगली के बारे में पूछ सकता है। अभ्यास क्रम में जिन हालतों में से वह गुजरे उनके बारे में खबर भी देता रहे। गुरुदेव ने अपने जीवन-काल में यह प्रक्रिया मुझे बतायी थी। परन्तु इस संबंध में ध्यान में रखने की एक बहुत महत्वपूर्ण बात यह है कि जिनसे अभ्यासी इस प्रक्रिया को ग्रहण करे वे विशिष्ट व्यक्ति किस प्रकार के हों। इसके लिये मेरे गुरुदेव का उदाहरण पहले से ही हमारे सामने है। अत्यधिक संयमन और साम्य की अवस्था में डूबे हुए व्यक्ति ही इस प्रक्रिया का लक्ष्य होने के लिए सबसे अधिक उपयुक्त हैं।

आध्यात्मिक विद्या पर आधारित यह विलक्षण प्रक्रिया अभ्यासी के लिये बहुत मूल्यवान है। मेरे लिए यह प्रक्रिया स्वतः प्रारंभ हुई। वस्तुतः गुरु के रूप का ध्यान इस प्रक्रिया में अप्रत्यक्ष रूप से निहित है। अतः यह नितांत आवश्यक है कि इस प्रयोजन के लिए अपनाया गया रूप बहुत योग्य व्यक्ति का होना चाहिये जिसमें महानतम नैतिक और आध्यात्मिक गुण हों। तभी यह प्रक्रिया अभ्यासी के अंदर वैसे ही सद्गुणों को विकसित करने में सहायक होगी। इस प्रक्रिया में अन्तर्निहित वैज्ञानिक सिद्धान्त यह है जब अभ्यासी ध्यान करता है तब उसके विचार उसके हृदय में एक रिक्तता उत्पन्न करते हैं जो उनकी शक्ति से, जिनका ध्यान किया जाता है, भरने लगती है, ताकि प्रकृति के नियमानुसार संतुलन बना रहे। जब तक प्रक्रिया चालू रहती है, शक्ति स्वतः अंदर की ओर प्रवाहित होती रहती है।

अब हम थोड़ी देर यह विचार करें कि कोई अपने को कैसे बनाता या बिगाड़ता है। संसार सूक्ष्मतम परमाणुओं से (उप आणविक कणों से) बना है जो घने और काले होते हैं, पर उनके बीच में हलकी चमक भी रहती है। इससे प्रकृति और पुरुष की साथ-साथ उपस्थिति की पुष्टि होती है। दिव्यता की ओर उन्मुख बुद्धिमान और विवेकशील पुरुष उज्ज्वल पक्ष को ध्यान में रखते हैं और उससे लाभ उठाते हैं।

दूसरी ओर, जो लोग भौतिक पदार्थों के आकर्षण में फँस जाते हैं, वे काले परमाणुओं से जुड़ जाते हैं और उनके जड़कारी प्रभाव को ग्रहण करते जाते हैं, जो उनके निरन्तर चिन्तन से दृढ़ हो जाता है। विचारों से संस्कार बनते हैं जो अधिकाधिक सबल होकर आवरणों का निर्माण करते हैं। मायावी प्रभाव के जम जाने के लिए वे (संस्कार) उर्वर भूमि प्रस्तुत करते हैं। शरीर के कणों पर इस प्रकार पड़ा प्रभाव आवरण पर संकेन्द्रित होकर, मष्तिष्क-केन्द्र पर प्रतिबिंबित होता है। इससे संस्कार बनते हैं जो गहन हो कर उसे वशवर्त्ती बना लेते हैं, जिसस उसका मन और भी दृढ़ता से ऐसे माहौल और संग-साथ से जुड़ जाता है जो उसकी दुष्प्रवृत्तियों को बढ़ावा देते हैं। इस तरह वह बद से बदतर होता जाता है। इस अवस्था में केवल सच्चे गुरु की शक्ति ही उसे बचा सकती है और उसकी कलुषित आन्तरिक दशा को बदलने में सहायता दे सकती है।

सच्चा गुरु वही और केवल वही हो सकता है जिसमें ऐसी अद्भुत् शक्ति हो और एक नजर में ही अभ्यासी के विचारों को कलुषता से प्रकाश की ओर मोड़कर उसमें प्रकाश की दशा उत्पन्न कर सके, यहाँ तक कि उसकी वृत्तियां जो पहले कालिमा की ओर प्रेरित थीं, अब उनमें प्रकाश समाने लगे। इस तरह प्रकाश की ओर उसका रास्ता

और सीधा हो जाता है और उसकी निजी आन्तरिक शक्ति इसके लिए सक्रिय हो जाती है। इस प्रकार उसकी समस्या सुलझ जाती है और वह सारे अहितकारी प्रभावों से बच जाता है और केवल वही ग्रहण करता है जो उसके लिए हितकर है। एक और खास बात है गुरुदेव के विलयन की नकल करने की कोशिश, जिसे अपनाने से कोई भी अवस्था पार करनी न बचेगी। मैंने यही किया था और इसी से मुझे अपनी वर्तमान हालत पाने में मदद मिली। भगवान् आप सब को इसके लिये क्षमता प्रदान करें।

एक बात जिसे मैं अपने सत्संग में चालू करना चाहता हूँ यह है कि हर एक अभ्यासी रात में ठीक नौ बजे, जहाँ कहीं भी वह हो वहीं, अपना काम छोड़ कर पन्द्रह मिनट के लिए ध्यान में बैठ जाय और चिन्तन करे कि सभी अभ्यासी भाई बहन प्रेम और भक्ति से प्रपूरित हो रहे हैं और उनमें सच्ची श्रद्धा दृढ़ हो रही है। यह उनके लिए बहुत मूल्यवान होगा जिसका पता उन्हें केवल अपने वास्तविक अनुभव से लगेगा।

भला हो उस समय का जिसके बदौलत यह मौजूदा घड़ी आई जो गुरुदेव के मिशन के पूर्ण होने का भरोसा देती है। हर कोई इसके लिये जो तोड़ मशक्कत करता है पर केवल वही जिसे ईश्वर ने निश्चित किया है, सफल होता है। पर

गुरुदेव का मिशन और उसके पीछे प्रयोजन है क्या? सीधा उत्तर है कि जब कोई महान् गुरु प्रकाशमय लोक के लिए प्रस्थान करता है तो वह सामान्यत: अपने साथियों की बेहतरी की देखभाल के लिए अपने दीक्षित शिष्यों में से एक को अपना प्रतिनिधि नियुक्त कर जाता है, जिसके लिए प्रतिनिधि को स्वयं गुरु से सीधे प्रकाश मिलता है। वास्तव में उसका काम सबसे कठिन है। बिना गुरु की अनुमति के वह इंच भर भी हट नहीं सकता, न एक बूंद पानी पी सकता है। छोटी से छोटी भूल पर उसे गुरु की भारी अप्रसन्नता का लक्ष्य होना पड़ता है।

एक विवादास्पद बात उठती है कि गुरुदेव ने अपने जीवन काल में (प्रतिनिधि की) घोषणा क्यों नहीं की। इसका कारण उन टिप्पणियों में पहिले ही बताया गया है, जिन्हे कोई भी चाहे तो देख सकता है। अन्य तथ्यों के साथ यह लोगों को संतुष्ट करने के लिए काफ़ी हैं। घटनायें भी स्वत: उन पर पहिले ही रोशनी डाल रही हैं। इसके अतिरिक्त, प्राण छूटने के पूर्व अपने प्रतिनिधि का नाम बताना गुरु के लिए हमेशा जरूरी नहीं है, और इसके अनेक उदाहरण हैं। और प्रमाण आवश्यक नहीं है, अत: मैं समझता हूँ कि मैंने ऊपर जो कुछ कहा है वह काफी है। जो चाहे वह स्वयं निर्णय करने के लिए आजमा और जाँच सकता है। इसके अलावा मेरी

दैनिक डायरी और गुरुदेव की उस पर बीच-बीच में टिप्पणियाँ इसका काफी सबूत देती हैं। साथियों के संग बातचीत में गुरुदेव ने मेरी डायरी से कई बार उद्धरण दिये और 'श्रीराम संदेश' नाम की पुस्तक में भी उसके उद्धरण प्रकाशित हुए हैं। ये सब बातें और पंद्रह अगस्त १६३१ की मेरी डायरी के नोट (जिस दिन गुरुदेव अनंत में लीन हुए) मेरी वर्तमान स्थिति का स्पष्ट संकेत देते हैं, जिसका किसी भी उपाय से पता लगाने के लिए हर किसी को छूट है।

पर दुर्भाग्यवश कुछ स्वार्थी लोग अपने स्वार्थ के लिये, विभिन्न प्रकार से तथ्यों को तोड़ मरोड़ कर इसे बदनाम करने की कोशिश कर रहे हैं। इसलिए इससे संबंधित घटनाओं का ब्योरा आपके सामने रख रहा हूँ। अप्रैल १६४४ के अंतिम सप्ताह में मेरी वर्तमान स्थिति उद्घाटित हुई और गुरुदेव से सीधा संपर्क स्थापित हुआ। तदनुसार ४ मई १६४४ से मैंने सीधे उनके आदेशों के अन्तर्गत काम करना शुरू किया, जिसका ब्यारेवार लेखा है। उस दिन से मैं उनके साथ के सभी लोगों को प्राणाहुति देने लगा और उन सभी के अंदर के गलत मनोभावों की वृद्धि को, जिन्हें गुरुदेव ने फोड़े की टपकन की तरह बताया था और जिन्हें वे भ्रमवश परमानन्द की अवस्था समझ बैठे थे, रोकने की चेष्टा करता रहा। मैं कुछ समय तक ऐसा ही करता रहा पर मुझे

खेद है कि बाद में इसे बंद कर देने का मुझे आदेश मिला, क्योंकि इस तरह प्राप्त अच्छे परिणामों का श्रेय दूसरों को दिया गया।

प्यारे भाइयो, इस विषय में मेरा कोई व्यक्तिगत स्वार्थ नहीं है, न मुझे धन या नाम की कामना है। मुझे केवल इस बात की चिन्ता है कि गुरुदेव से संबंधित व्यक्तियों का कल्याण हो और गुरुदेव का मिशन फले फूले। इससे हम सब लोगों को सन्तोष मिलेगा।

आपको यह जानकर आश्चर्य भी हो सकता है कि संबंधों की जो कड़ी अब तक मौजूद थी अब नहीं है, क्योंकि दैवी आदेश से यह काट दी गयी है और इसकी जगह एक और कड़ी लगा दी गयी है जिसके पास हर एक को अनिवार्यत: आना है।

इसलिये आप सब के लिये आवश्यक है कि इस नई कड़ी की ओर जितनी जल्दी हो सके घूम पड़िये और मुझे आपके संबंधों को सुधारने का अवसर दीजिये, जिसके बिना आप लोग गुरुदेव के अनंत अनुग्रह से वंचित रहेंगे।

मेरे गुरुदेव का मिशन

बसन्त पंचमी (१८७३) के शुभ दिन परम गुरु की दिव्य आत्मा फतेहगढ़ (उ० प्र०) के समर्थ गुरु महात्मा श्री रामचन्द्रजी

के शारीरिक रूप में पृथ्वी पर अवतीर्ण हुई। उस शुभ दिन ने, जो वर्ष की सबसे अधिक सुखद ऋतु में सौभाग्यवश पड़ा था, प्रत्येक हृदय को वसंत की खिलती हुई ताजगी से भर दिया। उनके शुभागमन से जिस आनंदमय समय का प्रारंभ हुआ उसने आध्यात्मिक जागरण के नये युग का सूत्रपात किया, जो मानव-अस्तित्व की समस्या के व्यावहारिक समाधान की आशा बँधाता है। हमारे हृदय हर्ष-विभोर हो जाते हैं जब उनके द्वारा आध्यात्मिक जगत में प्रवर्तित महान नवजागरण का हम स्मरण करते हैं। अस्तित्व की समस्या का, जो बड़े से बड़े ऋषि-मुनियों को भी भ्रमित करती रही है, वे एक आसान हल पेश करते हैं। मैं यहाँ जो कह रहा हूँ उसकी जाँच केवल वास्तविक अनुभव से हो सकती है।

एक समय था जब भारत आध्यात्मिक उत्कर्ष के चरम शिखर पर था और धर्म एवं अध्यात्म में विश्वगुरु होने का दावा करता था। पर समय बीतने के साथ अवनति का सूत्रपात हुआ और उसका प्रायः सब कुछ जाता रहा। कालान्तर से हम इतना नीचे गिर गये कि जो पहले हम से सीखते थे वे भी हमारे मार्ग-दर्शक होने का दावा करने लगे। निःसन्देह समय-समय पर उच्चतर आत्माएँ आती रहीं जो स्थिति को सुधारने और ठीक करने का प्रयत्न करती रहीं; पर उनके प्रयत्नों के बावजूद कुल मिलाकर अवनति बढ़ती गई।

अन्त में, न केवल हमने सब कुछ खो दिया बल्कि उसको हम बिलकुल भूल गये; और अब यदि उसका कोई भी अंश हमारी नजर के सामने आता है तो हमें बिलकुल अपरिचित लगता है और उस पर विश्वास करने का भी हमारा मन नहीं होता। बहुत दिनों से विस्मृत अध्यात्म-विद्या को न केवल पुनर्जीवित करने के लिये महान् गुरुदेव इस संसार में आये, बल्कि उसे हमारे व्यावहारिक ज्ञान और बोध में लाने के लिये भी आये।

इस प्रकार महान् गुरुदेव ने मानव जाति के आध्यात्मिक पुनरुज्जीवन तथा कष्टपीड़ित आत्माओं के उद्धार के लिये और प्राणाहुति की प्राचीन यौगिक विधि के द्वारा दिव्य मार्ग पर चलने में जनसाधारण की सहायता करने के लिये, अवतार लिया। यह विधि थी तो युगों पुरानी, पर उत्तर काल में सर्वथा विस्मृत हो गई थी और हिन्दुओं के मध्य से, जिनके संत इसके प्रवर्तक थे, जाती रही थी। मिशन इस बहुत ऊँची कोटि की सेवा के लिये प्रस्तुत है। इसके लिये किसी कार्यकर्ता का, प्रशिक्षकों तक का, कोई व्यक्तिगत स्वार्थ—धन, कीर्ति या प्रशंसा का—नहीं रहता। वास्तव में, अध्यात्म के किसी सच्चे शिक्षक का यह अत्यावश्यक कर्तव्य है। पर यह दुःख की बात है कि बहुत थोड़े लोग शायद इन तथ्यों को ध्यान में रखते हैं, क्योंकि हम अपने रहन सहन और वेशभूषा से रोबदार नहीं

दिखते। मेरे गुरुदेव की योग्यता शब्दों से परे थी। उनके सारे गुणों का वर्णन सूर्य को दीपक दिखाने जैसा होगा। यहीं कहना काफी है कि वे सच्चे अर्थ में समर्थ गुरु थे। उन्होंने लोगों के सामने मानव जीवन का आदर्श रखा, और कष्टों और चिन्ताओं से घिरे हुये साधारण मानव जीवन में उसे प्राप्त करने के सुनिश्चित साधन रखे। उन्होंने जो साधन सुझाया वह उच्चतम बिन्दु तक पहुचने की सरल राह थी, जिसके लिए पूर्वकाल में घर, परिवार और सांसारिक जीवन छोड़कर तपस्वी का जीवन अपनाना पड़ता था। उन्होंने न केवल लोगो को प्राकृतिक साधन की क्षमता में विश्वास दिलाया बल्कि उन्हें उस मार्ग पर उच्चतम तल तक सफलता-पूर्वक ले गये।

जिस पद्धति को वे प्रकाश में लाये वह सांसारिक कर्तव्यों और दायित्वों का निर्वाह करते हुये उच्चतम आध्यात्मिक प्रगति का सरल साधन प्रस्तुत करती है। भगवान कृष्ण के समय में ऐसे ही आशय की विधि चलन में थी, जिसके माध्यम से उन्होंने अपने समय में आध्यात्मिक प्रशिक्षण दिया। पर समय बीतते-बीतते यह पद्धति विस्मृत होकर लुप्त हो गयी। अब उसी पुरानी पद्धति को पुनर्जीवित करके हमारे गुरुदेव नयी साजसज्जा के साथ उसे प्रकाश में लाये हैं। निस्संदेह इसी उद्‌देश्य से उनका संसार में आगमन हुआ था। वे धन्य

हैं जिन्हें उनके साथ रहने का सौभाग्य मिला था। वे सारी कमियों से परे थे, उनकी कोई सानी नहीं थी। उन्होंने भ्रमित मानव जाति के लिए जो किया वह सचमुच शब्दों से परे है। जो लोग उनके साथ जुड़े हुये थे उनमें नकारात्मकता का भाव उत्पन्न करके—जो मनुष्य के स्वत्व मात्र को मुक्ति दिलाने के लिए पर्याप्त हैं—उन्होंने उन सब में एक नया जीवन फूँका। उच्चतम की प्राप्ति के लिए उन्होंने अचूक व्यावहारिक साधन चालू किये। यद्यपि इतनी महान योग्यता संपन्न विभूतियाँ वास्तव में बहुत दुर्लभ होती हैं, वे सदा विद्यमान रही हैं और रहेंगी पर उनका पता लगाना ही असली कठिनाई है, जो कुछ हद तक किसी के संस्कारों पर भी निर्भर करता है। एक और कठिनाई है। अगर हम किसी प्रकार ऐसी महान आत्मा के संपर्क में आ भी जायें, तो हममें से अधिकांश उन्हें ऐसा मानने के लिए तैयार नहीं होंगे क्योंकि वह कोई आकर्षण सामने नहीं रखते। यह सब मायिक प्रभावों के कारण होता है जिनसे वे घिरे होते हैं और जो उन्हें समान प्रकृति वाली चीजों तक सीमित रखता है।

प्राचीन काल में गुरु अभ्यासियों को अध्यात्म का लेश मात्र भी प्रदान करने के पहिले उनमें दिव्य ज्ञान की क्षमता विकसित करने के लिये और उसके लिए उनकी योग्यता बढ़ाने के लिये, उनसे बहुत शारीरिक सेवा कराया करते थे। लेकिन

हमारे महान् गुरुदेव ने सामान्य जन की असहाय अवस्था को ध्यान में रखकर बहुत अनुग्रह पूर्वक इस प्राथमिक शर्त को खत्म कर दिया। वे अपने सारे जीवन में अभ्यासी से शारीरिक सेवा लेने से बचते रहे। दूसरी ओर, जरूरत पड़ने पर उन्होंने उनकी शारीरिक सेवा के लिये स्वयं को अर्पित किया। इस तरह जीवन भर वे मानवता की सर्वतोमुखी सेवा में लगे रहे।

इस प्रकार, उनके प्रतिनिधि के रूप में मुझ पर प्रकट की गयी उनकी इच्छा के अनुसार समय की माँग पूरी करने के लिये, मिशन की स्थापना की गयी है और सहज मार्ग नाम से एक नयी पद्धति प्रचलित की गयी है। इस नव-प्रवर्तित सहज मार्ग की पद्धति के माध्यम से महान गुरुदेव द्वारा प्रस्तुत विचार-धारा का प्रचार करना और सोते हुये जनसाधारण को दिव्य चेतना की ओर जागृत कर उन्हें ठीक उन्नति के मार्ग पर लगाना—यही मिशन का लक्ष्य है। इस प्रयोजन के लिए यह आवश्यक है कि पुराने यंत्रवत् उपायों को छोड़कर, जिसमें जबरदस्ती के त्याग और तप शामिल हैं जो वर्तमान जीवन के वातावरण में सर्वथा अनुपयुक्त हैं, उनकी जगह सरल और स्वाभाविक साधन अपनायें जो आज के अधिक दुर्बल, कम सहिष्णु और अल्प आयु वाले आदमी की शारीरिक और मानसिक कमजोरियों के साथ चल सकें। इसके अतिरिक्त आधुनिक जीवन के बराबर बढ़ते हुए कामों के कारण लोगो

को प्राचीन पद्धतियों में निर्धारित उबाऊ साधनाओं को करने के लिये पर्याप्त समय नहीं मिल पाता।

असलियत, ज़िसकी मनुष्य आकांक्षा करता है, इतनी सीधी और सादी होती है कि उसी कारण वह प्रायः सामान्य धारणा को पहुँच के बाहर होती है। अतः उसका अनुभव करने के लिये हमें भी उतना ही सीधा होना पड़ेगा। इसके लिये यह नितान्त आवश्यक है कि जिन साधनों को हम इस प्रयोजन के लिये अपनायें वे भी उतने ही सरल और स्वाभाविक हों

मैंने और कहीं पहिले ही कह रखा है कि प्रकृति की सादगी और सरलता ही स्वयं पर एक पर्दा है। इसका मतलब है कि जब तक हम सरलता की उस सीमा तक अपनी नज़र नहीं बदल डालते तब तक उसकी एक झलक भी हमें नहीं मिल सकती। हमारी पद्धति में एक अभ्यासी में, उसके स्वयं के अभ्यास और गुरुदेव से मिली प्राणाहुति के प्रभाव से, ऐसी क्षमता विकसित होने लगती है। यह बात एक भाव प्रवण व्यक्ति भली भाँति समझ सकता है। पर साथ ही यह भी निश्चित है कि ऐसी क्षमता सुपात्रों में ही होती है। पर मनुष्य की वर्तमान अधोगति के कारण इस नियम में कुछ संशोधन होना चाहिये जिससे उन लोगों को भी मौका मिल सके जो कई प्रकार से योग्यता तो नहीं रखते पर जो साक्षात्कार की आन्तरिक चाह से प्रेरित हैं और अभ्यास आरम्भ करने में रुचि

रखते हैं। वैसी दशा में प्रशिक्षक उसकी (अभ्यासी की) उचित गढ़ाई भी अपने हाथ में ले लेता है, और अपनी संकल्प शक्ति के बल से उसमें भी अपेक्षित प्रतिभा का संचार कर देता है।

इस बात को ध्यान में रखकर गुरुदेव ने मानवजाति को अनुग्रह पूर्वक यह अद्भुत पद्धति दी है जो आज के समय की आवश्यकताओं के उपयुक्त है। इस पद्धति की सबसे उल्लेखनीय विशेषता यह है कि यह साधारण आदमी के सामान्य संसारी जीवन के साथ साथ, उसके कर्तव्यों और दायित्वों का ध्यान रखते हुये, चलती है ताकि जीवन के दोनों—सांसारिक और दैवी—पक्ष बराबर दीप्ति के साथ विकसित हो सकें। हमारी मंशा केवल इन विचारों का उपदेश देने या प्रचार करने की ही नहीं है, बल्कि इन्हें व्यवहार में लाने और दैनिक जीवन में लागू करने की भी है।

दक्षिण भारत के लोगों को अध्यक्ष का प्रथम संदेश

प्यारे भाइयों,

मुझे इस बात पर गहरी प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है कि मुझे आप लोगों के पास अपना संदेश भेजने का अवसर मिला। यह सबसे छोटा संदेश हो सकता है पर यह मेरे हृदय की अन्तरतम गहराई से, प्रेम और स्नेह के साथ फूट निकला है।

आत्मा अपनी असली प्रकृति का, जो नजर से ओझल हो गयी है, अनुभव करने के लिए लालायित है। और यह नाचीज हस्ती मुक्ति के मार्ग पर चल पड़ने के लिये, सहयात्रियों की तलाश कर रही है। सहयात्री पाने की मेरी इच्छा, मेरी लालसा, अपनी मंजिल तक सकुशल पहुँचने में केवल उसकी मदद करने के लिये है। पहली नजर में यह विचार आप सबको पराया लग सकता है। पर यदि आप मंजिल के मसले पर विचार करने के लिये थोड़ा रुकें तो आप जरूर इस नतीजे पर पहुँचेंगे कि आप अपने वतन की ओर बढ़े जा रहे हैं जहाँ से भाग्य की विडंबना से आप दूर फेंक दिये गये हैं।

जब हम "भाग्य की विडंबना" शब्दों को काम में लाते हैं, तो चरित्र के असंतुलन का भाव हमारे ख्याल में आता है। जब तक साम्यावस्था थी, हमारा अपना कोई रूप नहीं था। अब हमें केवल अपने को अनावृत करना और अपनी खोयी हुयी साम्यावस्था को फिर से पाना है।

जब हम कहते हैं कि हमें अपनी समता फिर से प्राप्त करनी है तो यह बात कितनी सीधी लगती है। निस्सन्देह यह बहुत सीधी है, पर इसे पाना बहुत कठिन है क्योंकि असंतुलित अवस्था के साथ हमने जटिलतायें पैदा कर ली हैं। हम अपना रास्ता खोजना या जीवन की अपनी समस्याओं को हल करना ऐसे कठिन उपायों से चाहते हैं जो अपने देश में बहुत प्रचलित हैं।

इसी से निराशा और कुण्ठा परिणाम में मिलते हैं। वे चरबीदार पदार्थ से अर्थात् उन लोगों से जो भौतिक ज्ञान के अहंकार में फूल कर कुप्पा हो गये हैं, तेल निकालते हैं। पर वे सच्चे निरभिमानी अध्यात्मविद् से मिलने की कभी चेष्टा नहीं करते—उससे वह जगमगाता हुआ तत्त्व पाने के लिए जो उनके अस्तित्व के परमाणुओं को आलोकित कर दे, चाहे वे कितने ही मलिन हों। तब संघर्ष की कठिनाई और बढ़ जाती है।

आसान चीज पाने के लिए आसान रास्ता पकड़िये। रूढ़िवाद से आपको कोई लाभ नहीं मिल सकता। जिसने उत्पत्ति स्थान तक का सारा फासला तय कर लिया है ऐसे मार्गदर्शक की देखरेख में की गयी व्यावहारिक साधना आपके भाग्य का निर्माण करेगी।

भारत में ऐसे लोग हैं जो बहुत आसानी से मंजिल तक आपका मार्ग-निर्देशन कर सकते हैं। पर मार्गदर्शक का चुनाव आपको स्वयं करना होगा, जिसकी कसौटी मार्गदर्शक की ओर से बिना किसी स्वार्थ भाव के सेवा होनी चाहिए। एक और गौर करने की बात यह है कि केवल ऐसा व्यक्ति ही आपको दिव्य ज्ञान देने की क्षमता रखता है जो आपका रास्ता आसान करने के लिये आपके अन्तर को दिव्य शक्ति से धीरे धीरे भर सकता है। ऐसे आदमी को पा लेना पक्का संकेत है कि जीवन की समस्या निस्सन्देह हल हो जायेगी। आप सब जिज्ञासुओं को

ऐसा मार्गदर्शक मिल जाय—मैं इसके लिए ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ। वे आपकी सहायता करें।

मैं समझता हूँ कि आपके आध्यात्मिक उत्कर्ष के लिए मार्ग-दर्शक (की प्राप्ति) के लिए प्रार्थना करने के अलावा मुझे और कुछ नहीं करना है। आप सब को आलोक की प्राप्ति हो। अपने बहुत प्रिय लोगों के लिए प्रेम के कारण यह संदेश मेरे दिल की गहराई से फूट निकला है।

सहज मार्ग पद्धति

आज मैं अपनी पद्धति सहज मार्ग (यानी आत्मानुभव का स्वाभाविक मार्ग) की कुछ महत्त्वपूर्ण विशेषताओं को आप लोगों को बता दूँ। यह पद्धति बहुत सीधे और स्वाभाविक कायदों से चलती है, जो सांसारिक जीवन के सामान्य क्रम में आसानी से बैठाये जा सकते हैं। यह कठोर तपस्या, अतिसंयम और शारीरिक उत्पीड़न की विधियों में से किसी को नहीं अपनाती, जिन्हें मन और इन्द्रियों का दम घोंटने के लिए काम में लिया जाता है। सहज मार्ग की विचार-धारा इतनी सीधी-सादी है कि अकसर इसी वजह से लोगों की समझ में ठीक तरह से नहीं आती। क्योंकि उनकी धारणा है कि आत्मानुभव बहुत कठिन काम है जिसके लिए कई जन्मों और युगों तक लगातार प्रयास आवश्यक है। पर यह उन लोगों के लिए कठिन हो सकती है

जो सत्य की अपनी भ्रान्त धारणाओं का बोझ लिये बढ़ते हैं और अपनी कार्य-सिद्धि के लिए पेचीदा साधन अपनाते हैं। सच तो यह है जिस सत्य को पाने की आकांक्षा की जाती है वह इतना सीधा होता है कि उसकी सिधाई ही उसका परदा बन जाती है। एक सीधी चीज को केवल सीधे साधनों से पाया जा सकता है। इसलिए सीधे के अनुभव के लिए केवल सबसे सीधे साधनों द्वारा ही सफलता सुनिश्चित हो सकती है।

जमीन से अपनी उँगलियों द्वारा सुई उठाना बिलकुल आसान है, पर यदि इसके लिए आप क्रेन का इस्तेमाल करें तो यह प्रायः असम्भव हो जायेगा। आत्मानुभव में भी ठीक वही होता है। इसलिए चकरा देने वाली विधियाँ और जटिल साधन, जिन्हें 'सरलतम' के अनुभव के लिए अपनाने की सलाह दी जाती है, मकसद पूरा नहीं करते। बल्कि वे आदमी को अपनी पैदा की गयी उलझनों में जकड़े रहते हैं। वास्तव में, आत्मानुभव न तो नसों और मांसपेशियों को लेकर चुनौती का खेल है, न त्याग, तपस्या और उत्पीडन को लिये हुये शारीरिक साधना। यह केवल अन्तरात्मा का अपने यथार्थ स्वभाव में रूपान्तरण है। सहज मार्ग केवल इसी को ध्यान में रखता है, इससे जुड़ी हुई और सारी बेठिकाने की फालतू बातों की उपेक्षा कर देता है। इस पद्धति में बताई गई विधियाँ केवल औपचारिक और यांत्रिक नहीं हैं, न उनका सम्बन्ध ध्यान के लिए आँख

बन्द करने मात्र से है। उनका एक निश्चित उद्देश्य, आशय और अंत है। उसके दो पक्ष हैं—एक अभ्यास, दूसरा प्राणाहुति या यौगिक संप्रेषण द्वारा गुरुदेव का सहारा, जो मार्ग की जटिलताओं और बाधाओं को हटा कर अभ्यासी की उन्नति को तेज कर देता है। पुरानी अभ्यास-विधियों के अन्तर्गत अड़चनों और रुकावटों को हटाने के लिए कठिन संघर्ष करना अभ्यासी का काम था; गुरु का काम इस मतलब के लिए उसके लिए कुछ यान्त्रिक विधियों को निर्धारित करके समाप्त हो जाता था। पर सहज मार्ग में ऐसा नहीं है। उसमें इस सम्बन्ध में बहुत कुछ उत्तरदायित्व गुरु का रहता है। वे यौगिक संप्रेषण या प्राणाहुति के द्वारा अपनी शक्ति लगा कर अभ्यासी के मन से रुकावटों को हटाते हैं और जटिलताओं को दूर करते हैं।

यौगिक संप्रेषण की युगों पुरानी यह विधि सदा से राजयोग का मूल आधार रही है पर आगे चल कर हिन्दुओं के बीच से, जो इसके असली स्रष्टा थे, यह गायब हो गयी। अब, मेरे गुरुदेव, फतेहगढ़ के समर्थ गुरु महात्मा रामचन्द्रजी महाराज के अद्भुत प्रयासों के फलस्वरूप बहुत दिनों से भूली हुई यह पद्धति पुनर्जीवित होकर प्रकाश में आई है। इस विधि में गुरु अपनी आन्तरिक शक्तियों के प्रयोग से अभ्यासी की प्रसुप्त शक्तियों को जगाता है, सक्रिय और त्वरित करता है और दिव्य धारा के प्रवाह को उसके हृदय की ओर मोड़ता है। अभ्यासी को

करना केवल इतना ही है कि वह गुरु की—जिनका मन और इन्द्रियाँ पूरी तरह से अनुशासित और संयमित हैं—शक्ति से अपने को जोड़ लें। उस दशा में गुरु की शक्ति अभ्यासी के मन की वृत्तियों को भी व्यवस्थित करती हुई, उसके हृदय में प्रवाहित होने लगती है। पर इसका सम्बन्ध गुरु-परम्परा के पुराने रूढ़िवादी मत से नहीं है। अपने 'मिशन' में हम इसे सेवा और त्याग भाव से भरे भाईचारे के रूप में लेते हैं। पर फिर एक कठिनाई आती है। आम तौर पर लोग ऐसे व्यक्ति से प्रभावित हो जाते हैं जो उनके सामने मोहक चमत्कारों का प्रदर्शन करता है। यद्यपि अभ्यास के प्रभाव से यह क्षमता स्वतः विकसित होती है, पर किसी भी दशा में यह योग-सिद्धि की कसौटी नहीं मानी जा सकती। इसके अतिरिक्त, सच्चा राजयोगी केवल प्रदर्शन के लिए कभी भी इसकी ओर प्रवृत्त नहीं होगा। पर चमत्कार भी दो प्रकार के होते हैं, एक दैवी प्रकृति के, दूसरे भौतिक प्रकृति के। पहले का आशय सदा धार्मिक होता है, दूसरे का सांसारिक। पहली तरह के चमत्कार उसमें जागृत होते हैं जो सूक्ष्मता के साथ आगे बढ़ता है और वे हमारे सामने खड़ी जीवन-समस्या को हल करते हैं। दूसरी ओर जो जड़ता को लिये हुये आगे बढ़ते हैं, उनमें दूसरी तरह के चमत्कार विकसित होते हैं जो हृदय को बहुत भारग्रस्त कर देते हैं। पर यदि कोई इस नीचे दरजे की उपलब्धि की दशा में निमग्न हो जाता है तो वह पूरी तरह, यों कहें, एक ग्रन्थि बन जाता है जिसमें

उसको डुबो देने के लिए एक भँवर रहती है। यदि यह शक्ति दूसरों पर लगायी जायेगी तो वे भी उसी भँवर में खींच लिये जायेंगे। हमारी संस्था में प्रायः हर किसी में यह क्षमता होती है पर गुरुदेव की सजग दृष्टि इसको वश में रखती है जिससे इसके कारण वह गुमराह न हो जाय। अभ्यासी को इसका पता भी नहीं रहता पर जब इसकी सच्ची जरूरत होती है, यह उसके माध्यम से प्रकट हो जाती है। इसलिए आध्यात्मिक सहायता और सहारे के लिए हमें ऐसे गुरु की आवश्यकता नहीं है जो अद्भुत चमत्कारों या आसन, प्राणायाम के असाधारण करतबों का प्रदर्शन करता हो या माया, जीव और ब्रह्म के दर्शन पर पांडित्यपूर्ण भाषण देता हो, बल्कि ऐसे गुरु की आवश्यकता है जो व्यावहारिक कठिनाइयाँ हल कर सके, रास्ते की रुकावटों को दूर कर सके और रास्ते भर अपनी आन्तरिक शक्ति से हमारी मदद कर सके। यदि सौभाग्यवश आपको ऐसा आदमी मिल जाय जिसकी संगति से आप में शान्ति और स्थिरता आती है और उसके प्रभाव से मन की बेचैनी शांत होती दिखती है, तो आपको समझ लेना चाहिए कि उसने इन्द्रियों की सीमा लाँघ ली है और अपनी आन्तरिक शक्तियों के प्रयोग द्वारा वह आपकी जीवन-समस्या हल करने में मदद देने योग्य है। प्रेम और भक्ति द्वारा उससे अपने को जोड़ने पर आप भी उसी तरह रूपान्तरित होने लगते हैं।

हमारी संस्था में किया जाने वाला नित्य का अभ्यास हृदय पर ध्यान है। इसी अभ्यास को पतंजलि ने भी सुझाया है। इस विधि के आधारभूत सिद्धान्त की व्याख्या 'राजयोग के दिव्य दर्शन" में की गई है, जिसे मैं यहाँ दोहराना नहीं चाहता। इस विधि से अपने अस्तित्व की जड़ता को बाहर फेंकने और बहुत उत्कृष्ट सूक्ष्मता की अवस्था पाने में सहायता मिलती है। हम जानते हैं कि ईश्वर जड़ता से एकदम मुक्त है, इसलिए ईश्वरानुभव का मतलब होना चाहिए वैसी ही, यथासम्भव सर्वश्रेष्ठ सीमा की, सूक्ष्मता की अवस्था की प्राप्ति। सहज मार्ग में यही हमारा लक्ष्य है। यह पद्धति अभ्यासी को आवरणों के रूप में अपने ऊपर जमी हुई जड़ता से छुटकारा दिलाने में मदद करती है।

सहज मार्ग की प्रणाली बिल्कुल सीधी है पर सामान्य लोगों की समझ के बाहर है क्योंकि यह निखालिस असलियत से बिलकुल लगी रहती है और सूक्ष्म तरीकों से आगे बढ़ती है। यह हृदय में दिव्य प्रकाश की उपस्थिति मान कर उस पर ध्यान करने का निर्देश देती है। पर किसी भी रूप या आकार में प्रकाश देखने की कोशिश न करने का अभ्यासी को निदेश दिया जाता है। यदि वह ऐसा करता है तो प्रकाश—यदि वह उसकी नजर में संयोगवश आता है—वास्तविक नहीं होगा बल्कि उसके मन द्वारा निर्मित होगा। अभ्यासी को प्रकाश को महज एक कल्पना के रूप में मानने की सलाह दी जाती है। उस दशा में

वह बिलकुल सूक्ष्म होगा और हम बिलकुल सूक्ष्म का ध्यान कर रहे होंगे। हर संत ने उसके लिए 'प्रकाश' शब्द का प्रयोग किया है और मैं भी इससे बच नहीं सकता क्योंकि उस अर्थ में वही शब्दावली सबसे अधिक उपयुक्त है। पर उससे कुछ उलझनें पैदा होती हैं, क्योंकि जब हम प्रकाश की चर्चा करते हैं तो चमकीलेपन का ख्याल सामने आ जाता है और हम उसे चकाचौंध करने वाला मानने लगते हैं। सच्चे प्रकाश का ऐसा कोई अर्थ नहीं होता और उसे 'बिना चमक वाले प्रकाश' के रूप में बताया जा सकता है। इसका आशय एक दम असली तत्त्व—और उपयुक्त शब्दों में—उस तत्त्व से है जो न प्रकाश के साथ है न अंधकार के, बल्कि दोनों से परे है।

हमारी अभ्यास-पद्धति में भी निस्सन्देह अभ्यासी को कभी कभी प्रकाश दिखलाई पड़ता है; पर ऐसा केवल शुरू में होता है जब पदार्थ ऊर्जा के सम्पर्क में आता है। दूसरे शब्दों में, यह केवल एक इशारा है—यह दिखाने के लिए कि ऊर्जा क्रियाशील हो गयी है। इसके अतिरिक्त, प्रकाश हमारा ध्येय न होने से, अपने अन्दर या बाहर चमकीलेपन को देखना आत्मानुभव-प्राप्ति का संकेत नहीं है।

सहज मार्ग पद्धति में केन्द्र और उपकेन्द्रों की प्रसुप्त ऊर्जा जागृत हो जाती है जिससे ठीक तरह अपने कार्य-सम्पादन में वे समर्थ हो सकें। जब उच्चस्थ केन्द्र जग जाते हैं तो वे

निम्नस्थ केन्द्रों पर अपना प्रभाव फैलाने लगते हैं और जब वे 'दिव्य' के सम्पर्क में आते हैं, तो निम्नस्थ केन्द्र उनमें लीन हो जाते हैं। इस तरह उच्चस्थ केन्द्र निम्नस्थ केन्द्रों की देख रेख करने लगते हैं। निम्नस्थ केन्द्रों की भी सफाई हो जाती है जिससे उन पर जमा हुआ अधिक जड़तामय प्रभाव हट सके। वही अच्छा से अच्छा परिणाम लाने का ऊचित और सबसे स्वाभाविक क्रम है।

एक बात जिस पर मैं विशेष जोर देता हूँ यह है कि ध्येय की प्राप्ति के लिए अभ्यासी को बेचैनी भरी उत्कण्ठा या चिकोटने वाली बेसब्री की सीमा तक की तीव्र अभिलाषा अपने अन्दर पैदा करनी चाहिये। आसानी से सफलता पाने के लिए इस भावना को, जिसे दर्द या बेचैनी कह सकते हैं, बढ़ाना चाहिये। पर मुझे भय है कि कोई उठकर यह न कहने लग जाय कि मैंने अध्यात्म के क्षेत्र में दर्द और बेचैना नहीं, बल्कि शान्ति और स्थिरता पाने के लिए, कदम रखा है; और अपने नजरिये से वह सही हो सकता है। पर अपने नजरिये से मैं कहूँगा कि पहली अवस्था उनके लिये है जिनकी आँखें ईश्वर पर लगी हुई हैं, बाद वाली अवस्था उनके लिए है जो, यों कहें, नशे का मजा लेने में शरीक होना चाहते हैं। बाद वाली अवस्था हासिल करना उतना मुश्किल नहीं पर पहली वाली चीज पाना निस्सन्देह बच्चों का खेल नहीं है। शांति की दशा का स्वाद बहुतों को

मिला होगा। आइये अब हम पहले वाली अवस्था को चखें जिसकी एक चिनगारी के लिए शांति और स्थिरता की हजार अवस्थाओं से वंचित रहने के लिए कोई भी तैयार हो जायेगा। यह वस्तुतः उस पूरी संरचना की नींव है जो दुर्लभ विशिष्ट व्यक्तियों को संसार में लाती है। असली शांति की वास्तविक अवस्था समझ के बाहर है। उसमें कहीं अन्तर्विरोध नहीं है। अक्षरशः वह न शांति है, न बेचैनी, न मिलन है न वियोग, न परमानन्द है न उसका उलटा। फिर भी वह ऐसा है जिसके लिए हमारे अन्दर दर्द पैदा हुआ था। भगवान करें आप सब को उस दर्द का स्वाद मिले। पर इसे अपने अन्दर पैदा करना कठिन नहीं है। दृढ़ संकल्प और उसकी ओर अडिग ध्यान, बस इसके लिए इन्हीं की जरूरत है। तब जिसे आप खोज रहे हैं वह आपके बहुत निकट ही मिलेगा। नहीं! जिसे आप तलाश रहे हैं वह हो सकता है आप स्वयं ही हों। उसके लिए जलता हुआ हृदय होना जरूरी है जो रास्ते की घास पात और झाड़ियों को जला कर राख कर दे।

ईश्वरानुभव का सबसे आसान रास्ता*

प्यारे भाइयों,

मानव जाति के साथ अपने बहुत गहरे प्रेम के कारण मैं अपने हृदय की भावनाओं को (आप सबके सामने) रख रहा हूँ

---

* श्री रामचन्द्र मिशन की गुलबर्गा शाखा के वार्षिक समारोह में १५-१२-१९५७ के दिन अध्यक्ष द्वारा दिया गया संदेश।

ताकि वे मेरे साथियों के, जो मेरे जीवन के बिलकुल अंगभूत हैं, हृदय में बुदबुदाने लगें जिससे प्रत्येक हृदय शान्ति और परमानंद से लबालब भर जाये। मेरा हृदय यहाँ और अन्यत्र भी आप सबसे जुड़ा रहता है और अखंड मौन में हृदयों को प्रेरित करता रहता है जिससे वे स्वाभाविक रूप से यथासमय प्रभावित होते रहें। किन्तु परम सत्य के अनुभव के लिए अपनी आध्यात्मिक जरूरतों के प्रति जागृत होना प्रत्येक जीवित प्राणी का दायित्व है।

हम उस देश के निवासी हैं जहाँ धार्मिक भावना एक या दूसरे रूप में सदा प्रवाहित होती रही है। जीवन का उद्देश्य प्राप्त करने के लिए विविध साधन अपनाये जाते हैं। यदि हृदय सच्चे अर्थ में उससे जुड़ा होगा, तो वे सही हो सकते हैं, जिससे वह यथार्थ जीवन के सार में समा जाय। जिस असलियत से हम निकले थे, उसी से मिलन के लिए, हमारा पालन-पोषण होता है। हम अपने साथ अनन्त का सार लेकर आये हैं और हमें उससे बहुत करीब रहने की कोशिश करनी चाहिये जिससे अनन्त में विलयन के विचार को पूरी छूट दी जा सके। यदि हम उसकी ओर लापरवाही बरतते हैं तो हम विचार की क्रिया से बँधे रहते हैं, मूल में स्थित सत्य से नहीं जो असीम है। जब कोई असल तत्व के यथार्थ आशय से अनभिज्ञ रहता है तो उसके द्वारा पढ़े गये मंत्र और की गयी प्रार्थनायें साधारणतः खुशामद मात्र रह जाती हैं।

अधिक ऊँची पहुँच के साधन और विधियों का पता लगाने के लिए महान् आचार्य सदा सक्रिय रूप से चिन्तन करते रहे हैं, यद्यपि हल बिलकुल पास में है। सचमुच आप तक पहुँचने का सबसे नजदीक रास्ता, ईश्वर तक पहुँचने का भी सबसे नजदीक रास्ता है। जीवन का उद्देश्य प्राप्त करने के सरलतम साधन जुटा कर मेरे श्रद्धेय गुरुदेव, फतेहगढ़ के समर्थ गुरु महात्मा रामचन्द्रजी महाराज ने इस क्षेत्र में मानवजाति की अद्भुत सेवा की है। उनकी विधियाँ इतनी सरल हैं कि उनकी सरलता ही सामान्य लोगों की समझ के लिए एक परदा हो जाती है। सूक्ष्मतम सत्ता के अनुभव के लिए सीधे और सूक्ष्म साधनों की जरूरत होती है। आत्मानुभव बहुत कठिन और जटिल काम बताया जाता है। इससे बहुत निरुत्साहित होकर लोग डर कर साधना छोड़ बैठते हैं। ऐसे विचारों को मन से बाहर निकाल देना चाहिए क्योंकि वे संकल्प-शक्ति को दुर्बल करते हैं, जो संकल्प-शक्ति आगे बढ़ने में हमारी सहायता के लिए एक मात्र हथियार है।

अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर मैं एक आसान तरीका सुझा रहा हूँ जिसको सब लोग बहुत आसानी से अपना सकते हैं। यदि कोई अपना हृदय बेच सके अर्थात् दिव्य गुरु को उसे भेंट में दे सके तो उसके लिए और कुछ करने को नहीं बचता। यह उसे सहज रूप से अनन्त सत्य में निमग्नता की

अवस्था में ले आयेगा। इस आसान और सीधे तरीके को अपनाने से प्रक्रिया का प्रारम्भ ही उसका अन्त हो जाता है। प्रेरणा स्वतः अन्दर बहने लगती है और व्यक्ति की समग्र सत्ता को रूपान्तरित करने लगती है। जीवन के सबसे प्रिय उद्देश्य की प्राप्ति के लिए एक नन्हे दिल के अतिरिक्त और क्या उपयुक्त भेंट हो सकती है ?

एक बात और : बहुत आसान ढंग से हृदय के अर्पण के लिए केवल संकल्प की आवश्यकता है। पर संकल्प जितना हलका और शुद्ध होगा, उतनी ही अधिक प्रभाविनी उसकी क्रियाविधि होगी। चेतना की बहुत गहरी परतों में पड़ा हुआ संकल्प का एक बहुत नगण्य बीज शीघ्र एक भरा पूरा, सब तरफ शाखाओं को फैलाये हुए, वृक्ष बन जाता है।

अन्त में इस विधि को अपनाने से, पहले दिन से ही निश्चित रूप से त्याग की वृत्ति आती है। इस मतलब के लिए साहसपूर्ण शुरुआत भर की जरूरत है। हम मनाते हैं कि सच्चे जिज्ञासु को आलोक का दर्शन हो और अपने यथार्थ आत्मा की पुकार सुनाई पड़े।

सभी जीवित प्राणियों का यथार्थ जीवन के प्रति आन्तरिक जागरण हो, इस प्रार्थना के साथ मैं अपनी बात समाप्त करता हूँ। सब का मंगल हो।

सहज़ मार्ग की दिव्यता*

हममें से बहुत ऐसे लोग हैं जिन्हें आत्मानुभव और स्वतन्त्रता के लिए भारी ललक है और जो इसे अपना कर्तव्य मानते हैं। पर जब हम कर्तव्य की बात करते हैं तो हम अपने को एक तरह की सीमा के घेरे में बँधा पाते हैं। वह सीमा क्या है? वह विचार और समझदारी का केवल एक संकुचित क्षेत्र है। हमारी वर्तमान अवस्था सीमित है जिससे हम दूर नहीं जा पाते और जहाँ से हम अधिक विस्तृत दृश्यों की ओर बढ़ते हैं— मेरा मतलब परम सत्य की झलक से है। पर यह इस पर मुख्यत: निर्भर है कि हम उस प्रयोजन के लिए किन साधनो और विधियों को अपनाते हैं। यदि संयोगवश हम ऐसे साधन अपना लेते हैं जो हमारे कमियों और बन्धनों को बढ़ाते जाते हैं, तो हम निश्चयत: सत्य के—परम सत्ता के—दर्शन से दूर रहेंगे। ऐसे तरीके हो सकते हैं जो कुछ खास लोगों के स्वभाव के अनुकूल हों पर वे मूलत: गलत या और तरह से अक्षम हो सकते हैं। वे बच्चे के खेलने के लिए खिलोने की तरह का काम दे सकते हैं जिससे केवल थोड़े समय के लिए शान्ति मिलती है, पर जो अधिकाधिक सुखोपभोग के प्रलोभनों की ओर ले जाता है। आनन्द के मार्ग पर आगे बढ़ने के लिए शायद वही उसे प्रेरित करने वाला आकर्षण हो। पर जब तक वह उस

---

* मैसूर में दिसम्बर १६६५ में दिया गया।

आकर्षण से बँधा रहता है, उसकी प्रगति रुकी रहती है। उसकी तुलना ठीक ही कुयें के मेंढक से की जा सकती है जो अपने संकुचित स्थान को समग्र संसार मान लेता है। पर यदि हमारा वर्तमान तल हमारे अन्दर उच्चतर प्रकार के अनन्त आनन्द को चेतना जागृत करता है तो हम अनन्तता के क्षेत्र में और आगे बढ़ने के विचार से प्रेरित हो सकते हैं। इसी से कहा जाता है कि ज्ञान के एक कण के लिए उससे दसगुना विवेक का होना आवश्यक है। यदि उतना विवेक है तो ध्येय जरूर हमारी दृष्टि में आ जायेगा और हम असलियत के क्षेत्र की ओर बढ़ने के लिए अधिकाधिक प्रेरित होंगे। पर कठिनाई तब होती है जब हम अपनी प्रगति के लिए अपनी खुद की चतुराई लगा कर अटक जाते हैं। जब ऐसा होता है, तब स्वतन्त्रता का विचार तक मन में नहीं आता। यह हमारी बड़ी दुःखमय गाथा है। ऐसे आदमी स्वयं अपने विचारों के शिकार होते हैं, जो उनके चिन्तन और अभ्यास पर परदे पर परदे लगाते जाते हैं। मतलब यह है कि उन्होंने अपने खुद के तरीकों में अपने को ऐसा जकड़ रखा है कि उन उलझनों से अपने को निकालने के लिए उन्हें जो तरीके सुझाये जाते हैं उन पर भी वे ध्यान नहीं देते।

इस प्रकार, जिस चीज को लेकर हम शुरू में रवाना हुए थे, मार्ग में हमारी प्रगति के लिए रुकावट बन जाती है। वास्तव में मानव आत्मा की प्रगति का कोई प्रमाणांक सम्भवतः

नहीं हो सकता क्योंकि अन्ततः हमें अनन्त में विलीन होना है। पर यदि हम किसी प्रकार मनुष्य की अन्तिम पहुँच को ध्यान में रख सकें, तब शुरू में अपनायी गयी विधि ही हमें रास्ते पर बढ़ाती जायेगी और ईश्वर स्वयं हमें ऐसा सद्गुरु प्रदान कर देगा जो हमें अपार्थिव परम सत्य के यथार्थ दर्शन तक ले जायेगा। दूसरी ओर, यदि किसी ने यथार्थ सत्य की धारणा को ग्रहण नहीं कर लिया है, तो जिन साधनों और विधियों को वह इस मतलब के लिए अपनाता है, वे ही उसकी आगे की प्रगति के लिए बन्धन सिद्ध होंगे। सुनिश्चित सफलता के लिए जिस एकमात्र चीज की जरूरत है वह ध्येय-प्राप्ति के लिए तीव्र बेचैनी है, जो सच्चे गुरु को आपके द्वार पर ले आयेगी।

उनके लिए, जो कम से कम सत्य की एक झलक पाना चाहते हैं, सही रास्ता मेरी राय में वह होगा जो हृदय के मर्म को छूता हो। इस मतलब के लिए अपनाये गये बाहरी साधन किसी काम के नहीं होते और किसी को ध्येय की ओर नहीं ले जाते।

इसके लिए सही विधियों का पता लगाने के लिए हमें उस कारण को ध्यान में रखना चाहिये जिसके माध्यम से सारी सृष्टि अस्तित्व में आई। इस प्रयोजन के लिए अवश्य ही कोई शक्ति कार्यरत थी। वह क्या थी? वह केवल "विचार" था, सृष्टि की भावना से परिपूर्ण, साथ ही पृष्ठ भूमि में पालन और संहार के भाव से भी। वही विचार मनुष्य के अन्दर उतरा

और उसके अस्तित्व का अनिवार्य अंग हो गया। यदि हम इस शक्ति का अपने अन्दर सही उपयोग कर सकें, तो रहस्य सुलझ जाता है। विचार की वही शक्ति होती है पर मनुष्य में, मानव तल की सीमानुसार यह सीमित रहता है। ज्यों ज्यों हम बढ़ते हैं उसकी क्षमता बढ़ती जाती है और जिन विभिन्न क्षेत्रों ~~और~~ और प्रदेशों के बीच से हमें अपने ध्येय की ओर यात्रा के दौर गुजरना पड़ता है, उनको हमारे अस्तित्व के लिए ग्रहण कर लेता है। बन्धन के रूप में ये आवरणों का काम करते हैं, जो हमें सत्य की झलक तक नहीं पाने देते। केवल योग्यता-सम्पन्न गुरु के हमारी सहायतार्थ आने पर हम, परम सत्य तक अपनी राह को सीधी और सरल बनाने के लिए, उन आवरणों को विदीर्ण कर सकते हैं। चक्र, केन्द्र और उपकेन्द्र भी शुरू की मंजिलों में हमारी प्रगति में रुकावट डालते हैं। सत्य की खोज में हमें इनमें से होकर गुजरना पड़ता है। अपने गलत चिन्तन और अभ्यास के प्रभाव से भी उलझनें पैदा होती हैं जिन्हें सफाई की विधि से हमें साफ करना पड़ता है।

संक्षेप में, सद्गुरु की सहायता, जिन्होंने उस सारी दूरी की यात्रा स्वयं पूरी की है और अपने अन्दर दैवी सामर्थ्य विकसित की है, इसलिए बहुत मूल्यवान् है। केवल तभी दिव्य शक्ति दिव्य केन्द्रों से अभ्यासी के अन्दर प्रवाहित होने लगती है। यह सूक्ष्म शक्ति अत्यन्त बलवती होती है, इतनी अधिक कि यदि कोई अभ्यासी अपनी कोशिशों से उच्चतर क्षेत्रों में घुसने

की चेष्टा भी करता है तो इस शक्ति के तेज प्रवाह के प्रभाव से, वह नीचे ढकेल दिया जाता है। उस दशा में, केवल गुरु की सक्रिय शक्ति ही प्रवाह के बीच से उसे ऊपर खींचती है और सत्य की एक झलक पाने के योग्य बनाती है।

पर अभ्यासी को भी कुछ करना आवश्यक है। सबसे पहले, गुरु में उसे पूरी आस्था होनी चाहिए और हर तरह उसे उनके साथ सहयोग करना चाहिए। यदि ऐसा है तो दिन प्रति दिन अवश्य उसका विकास होता जायेगा और वह अपने को परिवर्तित और रूपान्तरित अनुभव करेगा। निम्न कोटि की जागृतावस्था की चेतना रूपान्तरित हो जायेगी और उच्चतर चेतना के बीच उसकी यात्रा शुरू हो जायेगी। सामान्यतः तीन तलों की चेतना की बात की जाती है—चेतना, अवचेतना और अतिचेतना। पर ये बड़े मोटे भेद हैं, और इनमें से प्रत्येक के अनेकानेक तल हैं। निम्न चेतना के क्रिया-कलापों का प्रभाव अवचेतन मन पर जम जाता है और भाग्य का निर्माण करता है इसलिये करने की पहली चीज है सही चिन्तन और अभ्यास द्वारा निम्न चेतना को सही करना, जिससे वह स्वयं अवचेतन मन को दीप्तावास्था में लाने के लिए शक्ति के रूप में बदल जाय। यह हमें अतिचेतना की अवस्था तक ले आती है। यदि 'अतिचेतना' शब्द को बदल कर 'अति अवचेतना' कर दिया जाय, तो मैं समझता हूँ कि उसके आगे के प्रभावों को समझना अधिक सरल होगा। किसी भी तरह यदि गुरु के अनुग्रह से हम वहाँ

तक आ गये हैं, तो हमारे सामने एक और विषय आ जाता है। एक तरह से हम, इससे उच्चतर पक्षों को अपनी दृष्टि में लाने के लिए, उसमें लीन हो जाते हैं। 'उच्चतर' शब्द उसकी एक सूक्ष्म अवस्था की ओर संकेत करता है और उसी अर्थ में, इस प्रसंग में उल्लिखित, प्रदेशों और क्षेत्रों पर भी लागू होता है। संक्षेप में, चेतना की विविध अवस्थायें, एक के बाद एक, हमें 'त्रयी' के और असलियत के भी परे ले जाती हैं। तब मुक्त अवस्था शुरू होती है पर वह बहुत थकानेवाली यात्रा के उपरांत होती है। जब मुक्ति का उदय होता है तब यात्रा की थकान जाती रहती है और हम उसके भार से अपने को दबा हुआ नहीं अनुभव करते।

पर हमारा चलना अभी खत्म नहीं हुआ है। अभी भी हम 'आधार' की ओर चलते चले जाते हैं, जहाँ आत्मानुभव अपना मूल रूप धारण कर लेता है। रंगीन दृश्यों के समाप्त होने से अपने सच्चे रूप में परम सत्य का दर्शन तत्काल मिलने लगता है। पर चलना अभी भी समाप्त नहीं हुआ। अभी भी कुछ समझना बाकी है। मुक्ति का विचार भी वहाँ है, और जब तक वह है, एक बंधन बना रहता है, चाहे हमारी यात्रा का अन्त हो गया हो। केवल ईश्वर की सहायता हमें आगे ले जा सकती है पर केवल तभी जब हम पूर्ण विस्मृति की अवस्था में हों। इसलिये उस अर्थ में मैं लोगों को अपने को जानने के बदले अपने को भूलने के लिए प्रवृत्त करना अधिक पसन्द करूँगा।

वास्तव में यह आत्म-समर्पण की अवस्था है जिसमें कोई, सच्चे भक्त की तरह ईश्वर की, गुरु की, इच्छा के सामने अपने को पूरी तरह समर्पित कर देता है और उनके अनुग्रह की धूप खाता है। यही गुरु और भक्त का सम्बन्ध है जिसको बराबर कायम रखना है क्योंकि केवल उसी सम्बन्ध ने हमें अतिचेतना के सबसे ऊँचे तल तक पहुँचाया था। केवल यहीं हमारे अस्तित्व की सही विशेषता प्रकाशित होती है। पर यदि अब भी मुक्ति का भाव ठहरा रहता है, या उसे किसी तरह इसका अनुभव होता है, तो वह अभी बेड़ियों से छूटा नहीं है। जब मुक्ति की प्रतीति भी चली जाती है, तब वह विस्मय की भूल-भुलैया में अपने को खोया हुआ पाता है। असलियत तक का विचार वहाँ नहीं रहता। उसे लगता है कि अनन्तता के साथ साथ में नहीं चल पा रहा हूँ। इस अवस्था का सही वर्णन पूर्णतः विलय होना या हमारे अन्दर अनन्तता का पूरी तरह उड़ेला जाना—यह बता कर हो सकता है। जब हर चीज विलीन हो जाती है तब व्यक्ति अपने को कहीं नहीं पाता। ब्रह्म में निमज्जन शुरू हो जाता है, पर हम तब भी, मनुष्य के लिए निर्दिष्ट, अन्तिम अवस्था पाने के लिए आगे बढ़ते जाते हैं।

मुझमें यह कहने का साहस है कि सहज मार्ग के अतिरिक्त कोई अन्य साधना या पूजाविधि नहीं है जो मनुष्य जीवन के एक अंश जितने थोड़े समय में इतने उच्चस्तरीय परिणाम लाये। सहज मार्ग इसी का प्रतिनिधित्व करता है।

भाग २

भिक्षुक का भिक्षा-पात्र

"साधक वास्तव में भिक्षुक होता है, पर जो केवल महान् दिव्य गुरु के द्वार पर ही भीख माँगता है। वह भिक्षा-पात्र हाथ में लेकर उनके द्वार पर खड़ा रहता है पर वह क्या भीख माँग रहा है इससे अनजान। भिक्षुक और गुरु दोनों ही मौजूद रहते हैं। उनके बीच केवल यही भेद है कि भिक्षुक के हाथ में भिक्षा-पात्र रहता है। अन्त तक वह इस स्थिति को कायम रखता है।"

एक फ़कीर की दौलत

एक संत के पास, जो सांसारिक सम्पति के मामले में, बाहर से, भिक्षुक से अच्छा नही है, कौन सी दौलत होती है ? सचमुच वह भिखारी ही है, पर जो केवल महान् दिव्य गुरु के द्वार पर भीख माँगता है। वह उनके द्वार पर भिक्षा-पात्र हाथ में लिये खड़ा है पर उसे यह पता नहीं कि वह भीख में क्या माँग रहा है। इस तरह का भिखारी वह है।

आइये, हम उसकी मन की दशा पर विचार करें। वह गुरु के निकट उनके अनुग्रह की भीख माँगने जाता है पर वह इतना विस्मृत हो जाता है कि उसे यह भी याद नहीं रहता कि अपना भिक्षा-पात्र भरे जाने के लिए मैं इनके पास आया हूँ। बिना याचना के एक शब्द के, वह भिक्षा-पात्र उनके आगे कर देता है। उसे यह भी ध्यान नहीं रहता कि मैं किसके सामने खड़ा हूँ। वह इतना भूला हुआ है कि पागल की तरह वहाँ झपटता हुआ चला आया जहाँ उस स्थान की शान को रोशन करने वाली अन्तिम चिनगारी भी बुझ गयी है। वह इतना खोया हुआ है कि भिक्षा-पात्र को पकड़े हुये केवल हाथ उठे हुये हैं। क्या आप समझते हैं कि ऐसा भिक्षुक महान् गुरु की प्रचुर वदान्यता से मालामाल हो सकता है ? क्या ऐसे महान् गुरु ऐसे सच्चे

भिक्षुक से कुछ भी बचा कर रख सकते हैं ? निश्चयतः नहीं। तब स्थिति क्या होगी ? यदि गुरु उसे कुछ देते भी हैं तो उसे जो मिलता है उसका उसे पता भी नहीं लगता और न अब उसे अपनी बदली हुई स्थिति का भान होता है। गुरु और भिक्षुक दोनों ही वहाँ हैं; दोनों के बीच केवल एक अन्तर है—वह यह कि भिक्षुक के हाथ में भिक्षा-पात्र है। वह अंत तक इसी हालत में खड़ा रहता है। गुरु और भिक्षुक दोनों ही अपने को भूले हुये हैं। कोई ऐसी चीज नहीं है जो उस तक न पहुँची हो। तब भिक्षुक की क्या दशा होगी ? वह सन्तुष्टि की ऐसी अवस्था में स्थायी रूप से रह रहा होगा जिसकी बराबरी राजा की बड़ी से बड़ी सम्पदा नहीं कर सकती। गुरु के पास जो था उन्होंने बख्श दिया है और भिक्षुक को वही प्राप्त हो गया है—जिसके सामने बड़े से बड़े बादशाह और उच्च कोटि के संत सिर झुकाते हैं। पर आवश्यकता है ऐसा भिक्षुक होने की। इसकी तुलना में उसके लिए और सब कुछ नगण्य है। इसको समझना आसान होगा यदि भिक्षा-पात्र के स्थान पर अपने हृदय को मान लें।

हलके चलो

रेल विभाग सभी रेल यत्रियों को कम असबाब के साथ यात्रा करने की सलाह देता है जिससे साथ के यात्रियों को अधिक से अधिक सुविधा मिल सके। आत्मानुभव के मार्ग के यात्रियों

पर भी वही लागू होता है। हमें पता है कि संस्कारों के रूप में विद्यमान अपने असबाब के बोझ तले दबे हुए हम उस मार्ग पर बढ़ रहे हैं। पर सुविधापूर्ण यात्रा के लिए उनसे छुटकारा पाना आवश्यक है। वह दो तरह से हो सकता है। पहला, जैसे रेल-यात्रा में हम भारी सामान रेल के गार्ड के हवाले कर देते हैं, उसी प्रकार इस यात्रा में भारी सामान गुरु को सौंप कर उसके भार से छूट जाँय। दूसरे शब्दों में, यही समर्पण की भावना सूचित करता है। जब हमने अपना सारा असबाब गुरु को अर्पित कर दिया तो हम उनके अवरोधी प्रभाव से मुक्त हो गये। दूसरा ढंग, उनका भोग भोग कर उन्हें थोड़ा थोड़ा करके हटाना हो सकता है। पर वह लम्बी और उबाऊ और साथ ही बहुत कठिन प्रक्रिया होगी। पर अन्ततः किसी भी तरह हमें बहुत हलके से भी हलका होना है। मैं चाहता हूँ कि आप सब इस बात को ध्यान में रखें और उसी तरह काम करें। समय फिर नहीं लौटता। इसलिए हमें अपने अधिकाधिक लाभ के लिए उसका उपयोग करना चाहिए। महान् गुरुदेव के सच्चे अनुयायी के रूप में, मेरे पास, अपनी शुभकामनाओं के साथ थोड़े से सहारे के अतिरिक्त, देने के लिए और कुछ नहीं है। मैं किसी को भी अपनी सांसारिक सम्पत्ति का त्याग और अपने पारिवारिक जीवन से विदाई के लिए प्रवृत्त करना नहीं चाहता बल्कि मेरी मंशा तो, दिव्य गुरुदेव द्वारा उसे सौंपे गये हर काम को कर्तव्य भाव से करने के लिए प्रेरित करने की

है। वस्तुतः वही सच्चा जीवन और, हमारी, आध्यात्मिक और सांसारिक सभी कठिनाइयों का हल है।

उसके लिए अपना भरसक प्रयत्न करने की मैं हर किसी से आशा करता हूँ। मैं आप सबको यह भी विश्वास दिला दूँ कि मेरे भौतिक अस्तित्व-काल में जो भी उपलब्धियाँ आप अर्जित कर लेंगे, मेरे जाने के बाद वह आपके बडे काम की होंगी। पर यदि आप इसमें लापरवाही दिखायेंगे, यह सोच कर कि पार्थिव संसार से मेरे चले जाने के बाद भी मेरे साथ लगाव बढा कर आप उसे हासिल कर लेंगे तो यह आप के लिए बहुत कठिन काम होगा। परवाना जलती शमा पर तो जल मरता है पर ऐसा परवाना बिरला होता है जो बुझी हुई शमा पर अपने को होम दे। यह प्रायः असम्भव है। हाँ, इसके अपवाद हो सकते हैं, पर कम, बहुत कम। इसलिए एकमात्र हल होगा या तो उस स्तर तक पहुँच जाना जहाँ बुझी शमा पर जल मरना सम्भव और व्यावहारिक हो या उस उच्चतम अवस्था को पाना जहाँ जल मरने का प्रश्न ही न उठे। पर यह ईश्वर के अनुग्रह और अपने साहसपूर्ण प्रयासों पर निर्भर है।

स्मरण

मैंने अन्यत्र कहा है कि आत्मानुभव बहुत सरल है, यदि कोई अपना ध्यान भर उसकी तरफ मोड़ दे। इसका मतलब है

कि उसके दिल पर उसकी बहुत गहरी छाप पड़ी होनी चाहिए। जितनी गहरी छाप पड़ी होगी, सफलता उतनी ही आसानी और जल्दी से मिलेगी। जब कोई इतना कर चुकता है तो उसके लिए आगे करने को कुछ अधिक नहीं रहता। गहरी छाप लेने का अर्थ है उसी चीज को अन्दर ग्रहण करना जिसकी उसे अकांक्षा है। उस दशा में दिव्य विचार बराबर उसके हृदय में जगा रहेगा और सारे समय उसका ध्यान उस पर लगा रहेगा। सतत स्मरण का ठीक यही मतलब है। अब यदि यह विचार परम सत्ता में निमज्जित किसी साथी के विचार से जुड़ा हुआ हो तो आप स्वयं ही समझ लीजिए कि क्या यह विचार परोक्ष रूप से परम सत्ता से जुड़ जायेगा या नहीं। सही बात तो यह है कि ऐसी हालत में व्यक्ति की धारणा तो नाम मात्र की होती है। इस विचार से आप जितने ही गहरे पैठते हैं, उतने ही अधिक (सूक्ष्म प्रकार के) आवरण एक एक करके विछिन्न होते जाते हैं, यहाँ तक कि अन्त में केवल वही—आद्य—नजर के सामने रहता है। अब चूँकि उत्पत्ति स्थान उसकी नजर के सामने है अतः सीधे दैवी अनुग्रह पाकर वह धन्य होगा।

अब, जब अस्तित्व की वह परा अवस्था नजर में आ जाती है, तो उसे लगातार देखते रहने से यह बिलकुल स्वाभाविक है कि उससे प्रसारित होने वाले चुम्बकीय शक्ति के प्रभाव-वश अभ्यासी उस दृश्य को अपने में कैद कर ले और अवस्थारहितता, जो

सत्य की आधारभूत विशेषता है, उसके ऊपर जमने लगे। दोनों के बीच पारस्परिक प्रेम तभी हो सकता है जब इस कारण से विभिन्नता दूर होने लगती है और उसकी जगह समानता की भावना पनपने लगती है। लेकिन आप तब भी चलते जाते हैं और एकसापन बढ़ता जाता है। आप 'उनके' प्रभाव से भर जाते हैं। उनकी महानता का विचार पृष्ठ-भूमि में है पर स्मरण मात्र को छोड़ कर और कुछ नहीं बचता। स्मरण के प्रभाव से समानता का भाव इतना पुष्ट हो जाता है कि यह प्रतीत होने लगता है कि वे (ईश्वर) स्वयं ही हमारे स्मरण में डूबे हुए है। इस भाव के पक्के होने पर वह दशा आ जाती है जिसका वर्णन कबीरदास ने यों किया है: 'मेरा राम मुझे भजे तब पाऊँ बिस्राम'।

यह भक्ति की इन्द्रियातीत अवस्था है। इस अवस्था में प्रेमी स्वयं प्रिय हो जाता है और जब गुरु और शिष्य सच्चे अर्थ में परस्पर जुड़े होते हैं, तो ऐसा होना अनिवार्य है। वस्तुतः स्मरण उस कम्पन के बिलकुल समान है जो सृष्टि के समय, पदार्थों को अस्तित्व में लाने के लिए, स्फुरित हुआ था। आदि-कालिक स्मरण-अवस्था (कंपन) में विलीन हो जाना हर किसी के बूते की बात नहीं। केवल कोई दुर्लभ विशिष्ट व्यक्ति ही ऐसा करने में सक्षम हो सकता है। पर उसका यह अर्थ नहीं कि दूसरे लोग उसके लिए कोशिश ही न करें।

किसी को इस बात पर अचम्भा हो सकता है कि मैं आदि-कालिक कम्पनों की स्मरण के रूप में व्याख्या करता हूँ। यह इसलिए है कि नियमतः एक सूक्ष्म धारणा पहले मन में आती है जो आगे चल कर विचार का रूप ले लेती है। इस प्रकार सृष्टि उत्पन्न करने का प्रसुप्त दैवी संकल्प स्वतः कम्पनों में, विचारों का रूप लेकर, विकसित होता गया। विचार और स्मरण प्रकृति से बहुत समान हैं। स्मरण में एक प्रकार की हलकी संवेदना शामिल है जो विचार में केवल प्रसुप्त अवस्था में रहती है। संवेदना वेग को बढ़ाती है और सारे शरीर में कम्पनों को संचारित करती है। संवेदना के इस कोश के परे जाने पर आप स्मरण के उद्गम-स्थल पर पहुँच जाते हैं, जिसे आधार मान लिया जाय। उस स्तर से परे यह अव्याख्याय है। परम सूक्ष्मता के रूप में उसके कुछ अंश का कदाचित् अनुभव किया जा सके। मैं चाहता हूँ कि मेरे साथियों को वैसी सूक्ष्मावस्था पाने की क्षमता मिले। स्मरण और कम्पनों की वैसी ही अवस्था हर अगले मुकाम पर बनी रहती है पर सघनता की मात्रा में अन्तर के साथ, जिसे ठीक ठीक बताना कठिन है।

'अहं ब्रह्मास्मि' की दशा, जिसकी इतने उच्चस्वर में चर्चा की जाती है, विविध मतों के भक्तों के बीच लगातार हवाले और तर्कपूर्ण बहस का विषय रही है। व्यावहारिक दृष्टि से इस दशा के तीन पक्ष हैं जिनका अनुभव क्रम से होता है। इनमें

से पहली 'मैं ब्रह्म हूँ' यह अवस्था है, दूसरी 'सब कुछ ब्रह्म है' और तीसरी 'सब कुछ ब्रह्म से (उत्पन्न) है' यह अवस्था है। पहली का सम्बन्ध व्यष्टि से है, तीसरी का समष्टि से। दूसरी केवल बीच की अवस्था है जो अन्ततः सर्वव्यापकता तक ले जाती है। संसार के अधिकांश प्रख्यात संत पहली अवस्था के आगे नहीं जा सके, जब कि भारतीय संतों में से एक बड़ी संख्या उसके कहीं आगे गयी। यह सारी अवस्थायें हर बिन्दु पर मौजूद रहती हैं और केवल सूक्ष्मता की मात्रा का अन्तर रहता है। अपनी यात्रा के क्रम में हर अभ्यासी इन सभी अवस्थाओं से गुजरता है चाहे उसे इसका स्वयं बोध न हो।

ईश्वर ठोसता की कौन कहे, हर चीज से शून्य और सीधा सादा है। इसलिये उसे पाने के लिए हमारे लिए अपने को जड़ता और ठोसपन से बरी करना नितान्त आवश्यक है। ठोसपन हमारे अपने विचारों, कर्मों और परिवेश के प्रभाव से आता है। अतः हमारे विचार नियंत्रित और व्यक्तिगत मन पूर्णतः अनुशासित होना चाहिए जिससे जमा हुआ बोझ साफ हो जाय। हमें जितना सम्भव हो हलका हो जाना चाहिए जिससे गुरु की एक फूंक से हम उच्चतम उड़ान भरने लगें।

हमारी संस्था में पहले ही झटके में अभ्यासी के अन्दर असलियत उड़ेल दी जाती है। यह आगे बढ़ने में बीज का

काम करता है; गुरुदेव की सजग नजर के नीचे, विपरीत परिस्थितियों की झुलसा देनी वाली गरमी से अप्रभावित, वह विकसित होता चला जाता है। पर अपने सतत स्मरण द्वारा, जो अध्यात्म में तीव्र उन्नति को पक्का करने के लिए एक मात्र साधन है, उस बीज को सींचते रहना आपका काम है।

हमें तेज कदमों से बढ़ते जाना होगा—ध्येय तक पहुँचने के पहिले एक क्षण के लिए भी आराम न करते हुये। जब हमें सही रास्ता मिल गया है, तब उसे हमें मजबूती से पकड़े रहना चाहिये और किसी भी कीमत पर उससे अलग न होना चाहिए। हर तरह के स्थूल साधनों और यांत्रिक विधियों का त्याग कर देना चाहिए। जब हम रोज ब रोज अपने को अधिकाधिक हलका महसूस करने लगें, तब हमें यह समझ लेना चाहिये कि जो सबसे हलका और सूक्ष्म है उसकी ओर हम सही बढ़ते जा रहे हैं।

ईश्वर के अनुग्रह के सम्बन्ध में हमें कभी निराश नहीं होना चाहिए। ईश्वर सर्वोच्च स्वामी है और उसकी मर्जी हर तरह से पूरी होनी चाहिए। हमारे रास्ते में जो भी व्यवधान और उपद्रव आते हैं उनकी परवाह न करते हुये, हमें अपने को कंगाल समझना चाहिए और पूजा और भक्ति में बराबर लगे रहना चाहिए। हमें यह समझ कर कभी दिल छोटा न करना

चाहिए कि आन्तरिक विक्षोभों के कारण, जिन्हें मैं भौंकने वाले वाले कुत्तों का नाम देता हूँ, हमारी पूजा नियमित रूप से नही हो पाती। बहुत पिटाई करने पर भी कुत्ते कभी भौंकना बन्द नहीं करते। कुत्ते भौंकते रहें, उन पर कोई ध्यान दिये बिना हाथी चलता जाता है। यदि सम्भव हो, तो यह बेहतर होगा कि आप कुत्तों को ऐसा प्रशिक्षण दे दें कि वे पूजा के समय आपको क्षुब्ध करने के लिये भौंकें ही नहीं। पर उसके लिए, उनकी बेकायदा आदतों को सुधारने के लिए, आपको उचित उपाय करने होंगे। यदि उनका भौंकना रोकने के लिए आप शारीरिक बल से काम लेते हैं तो उनके हिंसक और आक्रामक होने का खतरा है। इसलिए उन्हें यह दिखाना बेहतर होगा कि उनके भौंकने से आपको कोई बाधा नही होगी। जब ऐसा हो जायेगा, तो अन्ततः उनका भौंकना शांत हो जायेगा। फिर, यदि हमने इस पर पहिले ही ध्यान दिया होता, तो उनका भौंकना कभी होता ही नहीं। संक्षेप में, हमें केवल उन्हें प्रशिक्षित करना है जिससे उनमें अपने आप उचित संयम और अनुशासन आ जाय। उसका एक ही तरीका होगा—अपने को उस तल तक उठा लेना जहाँ वे भी हमारे मन की आंतरिक अवस्था का प्रभाव ग्रहण करने लगें। इसका मतलब है उस स्तर की आध्यात्मिक अभ्युन्नति जब पशु तक प्रभाव ग्रहण करने लगे। ध्यान के लम्बे अभ्यास द्वारा यही लक्ष्य सिद्ध होता है।

कुत्तों के भौंकने से आशय मन और इन्द्रियों की संयमहीन क्रियाओं से है, जिन्हें ध्यान और स्मरण द्वारा सही किया जा सकता है।

आनन्दम्

मन की दो वृत्तियाँ होती हैं—एक संसार या विविधता की ओर निर्देशित और दूसरी परात्पर या एकमेव की ओर। इनके बीच उचित तालमेल होना चाहिये। इनमें से किसी एक पर अतिशय आग्रह एक कमी होगी। यहीं पर एक साधारण संसारी और सच्चे संत के बीच अन्तर है। सच्चा संत इच्छा करते ही अपने मन की अधोमुखी वृत्तियों को ऊर्ध्वमुखी कर सकता है। यह एक संसारी इनसान के बस का नहीं है। एकता की अवस्था में पूरी तरह प्रविष्ट होने के बाद भी संत विविधता की ओर अपने कदम लौटा लेता है। दूसरे शब्दों में, जब एकता की अवस्था में पूर्ण विलयन प्राप्त हो जाता है, तब नकारने के लिए कुछ बाकी नहीं बचता। तब प्रतिवर्तन की बारी आती है, जैसा कि केन्द्र में घटित होता है। केन्द्र के क्षेत्र में अस्तित्व की वह दशा समाहित रहती है जो बाद में रूप और आकार में विकसित होती है। उसका मतलब है कि पूर्ण विलयन की अवस्था के लिए 'एकता में विलयन' यह शब्दावली अनुपयुक्त है क्योंकि तब एकता भी शेष नहीं रहती। उसके लिए सबसे उपयुक्त

शब्दावली होगी—'वह जैसी है, वैसी है'। पर उस अवस्था में न आनन्द है, न आकर्षण, आह्लाद तक नहीं। वह अवस्थाहीनता की दशा है। उस मुकाम तक पहुँचा गया आदमी सम्भवतः यह समझने लगे कि मेरा तो कबाड़ा हो गया, क्योंकि हो सकता है उसे दिलचस्पी, खुशी, आनन्द किसी का भी अनुभव न होता हो। यही वस्तुतः असली आनन्द है जिसकी कोई आकांक्षा कर सकता है। पर तब कोई कह सकता है कि शास्त्र में दिये गये वर्णन (आनन्द के भण्डार) से तो यह नहीं मेल खाता। पर यह केवल भ्रान्त धारणा है क्योंकि असली आनन्द कोई ऐसी चीज नहीं जिसका किसी तरह खुशी या सुख की भावना से सम्बन्ध हो। अब यदि कोई उस दशा, बिना बीच के मुकामों से गुजरे, पहुँचा दिया जाय तो उसमें न विश्वास रहेगा न अधिकार।

पहुँच के ऊँचे तलों पर, भावानुभूति भी समाप्त हो जाती है। विभेदकरण की वृत्ति प्रायः जाती रहती है और बिना इस बात की जानकारी के, 'ज्ञानहीनता' बढ़ने लगती है। वस्तुतः उसी कारण से प्रारम्भिक प्रशिक्षण देने के लिए मैं सर्वथा अयोग्य हो गया हूँ। प्राथमिक स्तर के लोग, जो मेरे पास आध्यात्मिक प्रशिक्षण के लिए आते हैं, मुझसे मेरी अपनी ही अवस्था, या कम से कम उससे कुछ मिलती जुलती चीज प्राप्त करते हैं। और ठीक यही चीज उन्हें बिलकुल अच्छी नहीं लगती क्योंकि यह उनकी रुचि के माफिक नहीं है। वे तो कुछ

उत्तेजक, सुखद, आनन्द-दायक चीज चाहते हैं, जो उनकी समझ से वह वहाँ होती नहीं। मनुष्य के भोजन की व्यंजनों से भरी थाली की अपेक्षा सड़े मांस का टुकड़ा गिद्ध को अधिक स्वादिष्ट लगता है। यदि मैं उन्हें अपने स्तर से काफी नीचे से प्राणाहुति देता हूँ तो मेरी साँस फूलने लगती है क्योंकि मैं उस दशा का अभ्यस्त नहीं हूँ। यदि ऐसी आवश्यकता पड़े तो मैं एक सीमा तक नीचे उतर सकता हूँ; पर वह भी केवल एक या दो मिनट के लिए।

ध्येय और मार्ग

हम ठीक से समझते नहीं कि संसार में हमारी क्रियाओं का ईश्वरीय क्षेत्र के वातावरण पर क्या प्रभाव पड़ता है। हमारे हृदय की आन्तरिक भावनाओं के साथ जुड़ कर हमारे क्रिया-कलाप ब्रह्मांड में संस्कार उत्पन्न करते हैं और मानव-मन को प्रभावित करते हैं। वे ब्रह्मांडीय ऊर्जा की क्रिया से अधिकाधिक सबल होते जाते हैं और उनका आघात पाकर लोगों के दिल उनका प्रभाव ग्रहण कर लेते हैं और अधिकाधिक विचारों की सृष्टि करने लगते हैं। इस तरह से हम अपने जन्म से ब्रह्माण्ड को बिगाड़ते रहे हैं। यही कारण है कि हम एक क्षण के लिए भी निर्विचार नहीं होते। पर ऐसे लोग जो जगत से ऊपर उठ आते हैं, निःसन्देह करीब करीब निर्विचार हो सकते हैं। जब कोई आदमी अपने सामान्य काम में, चाहे वह किसी प्रकार का हो,

कर्तव्य भाव से, अपने हृदय पर बिना उसका बोझ या संस्कार लिये हुये, लगा रहता है, तो वह न तो अपने को, न ब्रह्माण्ड को, बिगाड़ता है। इसीलिये भगवान श्रीकृष्ण ने कर्तव्य के सच्चे अर्थ को पहचानने पर इतना बल दिया है। इस तरह हम प्रारम्भ से ब्रह्माण्ड को विकृत करते रहे हैं जब कि सर्वोच्च शक्ति—प्रकृति—इन सब चीजों की सफाई करने में लगी हुई है। बीच बीच में, जब वह (गंदगी) बहुत इकट्ठी हो जाती है, तो (सफाई का) काम करने के लिए एक विशिष्ट व्यक्ति का अवतरण होता है। भोग के वातावरण की चारो ओर सृष्टि की जाती है जिससे मानव जाति को पीड़ा और सन्ताप झेलना पड़ता है। युद्धों, रोगों और दैवी आपदाओं जैसे विशेष साधनों को भी काम में लिया जाता है। जैसा काम पूरा करने के लिए भगवान कृष्ण अवतीर्ण हुये थे, उसी तरह के काम को पूरा करने के लिए, उस प्रकार की एक महान् शक्ति पहले से ही इस समय कायरत है।

लोग अकसर यह कहते हैं कि अपने निजी कामों में हम इतने व्यस्त हैं कि पूजा और उपासना के लिए हमारे पास समय ही नहीं है। पर यह एक सामान्य उक्ति है कि सबसे व्यस्त आदमी के पास सबसे अधिक फुरसत रहती है। मेरी समझ से, आदमी के पास काम से ज्यादा समय रहता है। अध्यात्म के मन्दिर का निर्माण करने में सेवा और त्याग दो साधन हैं।

प्रेम तो नींव है ही। निस्स्वार्थ भाव से की गयी कोई भी सेवा सहायक होती है। सेवा के साथ पूजा भाव रहना चाहिए और हमें उसमें उतना ही व्यस्त रहना चाहिए जितना अपने जीवन की दैनिक दिनचर्या में। इसके लिए सबसे सरल उपाय है, हर काम को जिसे करना है ईश्वर की आज्ञा और अपना कर्तव्य मानना। हमें यह याद रखना चाहिए कि इस संसार में जो कुछ हमारे पास है वह सब ईश्वर के पास से आया है। हमारे साथ के प्राणी भी उसी की सृष्टि हैं। वह हर चीज का मालिक है और हम सब उसके बच्चे हैं, भले ही उनमें से कुछ हमारी देखभाल में रख दिये जाते हैं। इस प्रकार हम अत्याधिक मोह की भावना से मुक्त हो जायेंगे। यदि यह भावना गहरी जड़ पकड़ ले, तो आदमी उनकी सेवा कर्तव्य-भाव से करेगा और साथ ही 'परम स्वामी' को स्मरण भी करता रहेगा। यही अंततः सतत स्मरण की आदत में विकसित हो जायेगा।

जीवन का ध्येय आसानी से हासिल हो सकता है यदि हमें उससे सच्चा लगाव हो और 'परम स्वामी' का स्मरण मन में बराबर होता रहे। लगाव से हम अपने और मालिक के बीच एक कड़ी कायम करते हैं जो हमारे आगे बढ़ने के लिए रास्ते का काम करती है। हमें केवल उसे साफ-सुथरा और काँटों और झाड़ियों से, जो हमारे रास्ते के अवरोध हो सकते हैं, मुक्त रखना हैं। लक्ष्य की ओर एकाग्रता और भक्ति की तीव्रता

रास्ते को साफ रखने में सहायक होते हैं। जब रास्ता साफ रहता है तो हृदय व्यक्ति को उस पर आगे ठेलता है। अवरोध मुख्यत: मन में मंडराते हुए परस्पर विरोधी विचारों के रूप में होते हैं। ध्यान के प्रभाव से उत्पन्न अस्थायी उपशम का मतलब है एक कदम और आगे (की प्रगति)। जैसे जैसे इस अभ्यास में कोई आगे बढ़ता है, वैसे वैसे उसे अनुभव होता है कि विरोधी विचार लुप्त होने लगे हैं। जब यह अवस्था स्थायी हो जाती है, तब ईश्वर के निकटता की धारणा प्रधानता ले लेती है।

आत्मानुभव प्राप्त करने की अनेक विधियाँ निर्धारित की जाती हैं, उनमें से प्रत्येक व्यक्ति विशेष की अपनी रुचि या मनोवृति के उपयुक्त होती है। बहुत नीचे स्तर का आदमी ध्यान में मन नहीं लगा सकता; पर वह अपनी आन्तरिक जड़ता के कारण ठोस चीजों से शुरू कर सकता है और मूर्तियों की, नि:संदेह सर्वशक्तिमान के भाव से, पूजा कर सकता है। पर दुर्भाग्यवश ऐसे लोग मूर्ति को ही ईश्वर मान लेते हैं और किसी उच्चतर सत्ता की धारणा को एकदम छोड़ देते हैं। उनमें से थोड़ा आगे बढ़े हुए लोग सामान्यत: वे समझे जाते हैं जो अपने मन में निर्धारित मूर्ति से मिलती जुलती काल्पनिक आकृति का ध्यान करते हैं और अपनी कल्पना में उसे ही पुष्प, ... करने की यांत्रिक पूजा के सामान्य क्रम

का पालन करते हैं। वे इसे मानसिक पूजा का नाम देते हैं और इसे ऊँची अवस्था समझते हैं। वस्तुतः वे पहले वर्ग के लोगों से किसी तरह बेहतर नहीं हैं। दोनों ही दशाओं में परिणाम बिलकुल एक होता है और अंततः वे चट्टान के समान ठोस हो जाते हैं।

सती

सीतापुर जिले में अभी हाल में घटित हुये सती-कांड ने उस पर चिन्तन करने के लिए मेरी कुछ रुचि जागृत की, जिससे मैं उस समय की उसकी मनोदशा का पता लगाऊँ। स्पष्ट है कि वह अपने पति के प्रति प्रगाढ़ प्रेम से प्रेरित हुई। प्रेम इतना गहरा था कि वह वियोग नहीं सह सकी और अपने मृत पति की चिता पर जल मरना उसे बेहतर लगा। जब मैं अपना पति के प्रति उसके प्रेम की तुलना, अपने स्वामी, गुरुदेव के प्रति अपने प्रेम से करता हूँ तो मुझे कुछ आत्म-संशय होता है। जैसा मैं इसे समझता हूँ, उसका यह काम मृत्यु के बाद भी सदा अपने पति के निकट रहने की व्यग्र इच्छा से प्रेरित था। यदि सती होने का एक मात्र आशय अपने पति के साथ शाश्वत सम्पर्क बनाये रखना है, तो मैं समझता हूँ कि उसकी तुलना भली भांति एक सच्चे शिष्य से की जा सकती है जो अपने गुरु के पार्थिव शरीर त्यागने के बाद भी, उनसे अपना संपर्क बनाये

रखना चाहता है। क्या ऐसा निष्ठावान् शिष्य सती की बराबरी का नहीं होगा ?

अब हम थोड़ी देर के लिए प्रकृति की विधेयात्मक और और निषेधात्मक[1] शक्तियों के रूप में पुरुष और प्रकृति के सिद्धान्त पर विचार करें। नारी स्त्री रूप में प्रकृति या नकारात्मक की प्रतिनिधि है और मर्द पुरुष रूप में 'पुरुष' या विधेयात्मक का प्रतिनिधि है। शिष्य अपने गुरु के ध्यान में, जो मान लीजिये विधेयात्मक है, डूबा रहता है। उसके लिए उसे अपने को नकारात्मक बनाना आवश्यक है। इन दोनों शब्दों[1] पर गणित की दृष्टि से विचार करने पर, पहला आधार या शून्य से ऊपर की ओर जाने का संकेत करता है, दूसरा नीचे की ओर जाने का। मनुष्य की वर्तमान अवस्था को प्रस्थान-बिन्दु या आधार मान लिया जाय, तब नकारात्मकता का अर्थ होगा नीचे जाना या अपरिग्रह या दूसरे शब्दों में गरीब बनना और जो कुछ उसकी ऊपरी हस्ती यानी सांसारिकता बनाते थे उनसे विहीन। क्या जिसे असलियत समझा जाता है उसकी ओर बढ़ना यह नहीं गिना जायेगा ? यदि ऐसा है, तो इसका मतलब है कि नकारात्मक की ओर बढ़ने वाला व्यक्ति धीरे धीरे विधेयात्मक में रूपान्तरित होता जाता है। इससे इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि एक स्त्री

---

१. Positive and negative (धनात्मक और ऋणात्मक)

(या सती) इस प्रकार पुरुष में रूपान्तरित हो जायेगी। सही आध्यात्मिक अर्थ में विधेयात्मक उसको सूचित करता है जो पुरुषत्व के भाव से रहित हो। उस दशा में वह स्त्रीभाव के समान्तर ही सकता है। पर वह वह भी नहीं है क्योंकि स्त्रीभाव नकारात्मकता से जुड़ा होता है और हम स्वयं नकारात्मक हो गये हैं। इस प्रकार वह स्त्री भी नहीं है। तब क्या हो ? अपने सच्चे अर्थ में, वह न विधेयात्मक है न निषेधात्मक बल्कि दोनों से परे है। मैंने उसे इस तरह व्यक्त करने की चेष्टा की है :

जब बूंद समुद्र में समा जाती है तो वह स्वयं बदल कर समुद्र हो जाती है।

जहाँ तक अध्यात्म का सम्बन्ध है, यह प्रेम की अन्तिम सीमा है। जब आदमी अपने को उससे जोड़ लेता है जो न मर्द है न औरत, तो वह स्वयं अन्ततः वैसा हो जाता है। अब सती को अपने पति की पुरुष के रूप में धारणा और उस हैसियत में उसके लिए प्रगाढ़ प्रेम, उस धारणा से उसे दृढ़ता से बाँधे रहते हैं और मुक्ति की ओर उसकी पहुँच रुक जाती है। उसी तरह, यदि शिष्य अपना ध्यान गुरु की विधेयक-निषेधक-विहीन धारणा पर नहीं जमाता, तो उसे अपने अन्तिम ध्येय की प्राप्ति कभी नहीं हो सकती।

मेरा विश्वास है कि अपनी उच्चतम अवस्था में सती को मानव-शरीर-रचना में अपेक्षित तत्त्वों पर अधिकार प्राप्त हो

जाता है। यह इसलिए होता है कि उसका ध्यान बराबर शरीर पर केन्द्रित रहता है और उसके आगे जाता ही नहीं। पर यदि उसका पति ऐसा हो जिसने उच्चतर पहुँच हासिल कर ली हो, तो वह स्वतः उसकी पहुँच के तल तक ऊपर खिंच जायेगी। यह मेरी मान्यता है। मैं नहीं जानता कि इस विषय में शास्त्र क्या कहते हैं। जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, मेरा पक्का विश्वास है कि यदि गुरु स्वयं आध्यात्मिक उन्नति के उच्चतम अवस्था तक नही पहुँचा है, तो उसका शिष्य निश्चयतः लक्ष्य से पीछे रहेगा, जब तक कि वह 'सर्वोत्कृष्ट' से अपना सीधा सम्पर्क स्थापित नहीं कर लेता। शायद यही कारण है कि 'सर्वोत्कृष्ट' से सीधे प्रेम को वरीयता दी जाती है।

पर यह जान कर आश्चर्य होगा कि अपने पति के लिए प्रशंसनीय प्रेम, भक्ति और त्याग के बावजूद, एक सती नारी का मुक्ति तक पहुँच नहीं होती। मेरी राय में इसका कारण केवल यह है कि वह स्वभावतः मानव की हैसियत से उसे पति और आश्रयदाता मानती है। दूसरी ओर यदि उसका पति अपने व्यक्तित्व के भाव से दूर चला गया हो, जो कभी कभी ही होता है, तो वह स्वतः उस निम्न धारणा से ऊपर उठ जायेगी। इस प्रकार, एक तरह से उसके मुक्ति न पाने के लिए उसके पति को उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।

नकारात्मकता पर मेरे इतने अधिक बल देने का कारण यह है कि उसके बिना गाँठों का खुलना और अपना फैलाव सम्भव नहीं है। गेहूँ के दानों में से प्रत्येक की अपनी अखंड सत्ता होती है, पर पिस कर आटा बनने पर वे अपना आवरण त्याग देते हैं और उनकी अलग सत्ता समाप्त हो जाती है। नकारात्मकता और कुछ नहीं है केवल उस ऊर्जा को निष्प्रभाव कर देना है जिसने ठोस रूप या विधेयात्मक अवस्था बनाने में मदद की थी। इसी प्रकार, जब तक मनुष्य अपनी ठोसता की अलग हालत बनाये रखता है उसके व्यक्तित्व की गिनती हो सकती है, उसी तरह जैसे गेहूँ के दाने की जो अपना व्यक्तित्व तभी खोता है और विशुद्ध या सूक्ष्म तभी बनता है जब पीसा जाता है या नकारा जाता है। इस प्रक्रिया में स्थूलतर कण टुकड़े टुकड़े हो जाते हैं और बन्धन विछिन्न हो जाते हैं। दूसरे शब्दों में विधेयात्मकता समाप्त हो जाती है, एकरूपता की अवस्था का सूत्रपात होता है, जो 'असल' से निकटतर सम्पर्क स्थापित कर देता है। तब आदमी न विधेयात्मक रहता है न नकारात्मक बल्कि दोनों से परे हो जाता है। मैं अपने गुरुदेव को इसके अलावा किसी और अर्थ में नहीं लेता था और मैं हर दिल में, चाहे शत्रु चाहे मित्र का हो, केवल उन्हीं का प्रकाश चमकता हुआ अनुभव करता था। परिणाम यह हुआ कि अन्त में अपने निज को हर एक प्राणी के अन्दर (स्थित) अनुभव करने लगा। एक कुत्ता मुझे बिलकुल अपने समान लगता था।

सारे विभेद समाप्त हो गये। कीमत में सोना और मिट्टी के ढेले मुझे एक से लगने लगे। सापेक्षता की भावना प्रायः नष्ट हो गई और सम्बन्धों की कड़ी कटी हुई लगने लगी। अपने सम्बन्धियों में से किसी को मैं बन्धुता भाव से नहीं देखता था। मेरे पिता, माता, भाई, बच्चे सब मेरी दृष्टि में ठीक जैसे वे सच में थे वैसे लगने लगे। यह साधारण उपलब्धि नहीं है पर सहज मार्ग की सरल साधना से आसानी से मिल सकती है। काफी तरक्की के बाद यह अवस्था यथा समय अपने आप आ जाती है। वास्तव मे यह वैराग्य की ऊँची अवस्था है। अब जो साथी लोग मेरे प्रशिक्षण में मेरे पास हैं, मान लीजिए कि मैं उन्हें अपना शिष्य समझ लूँ। तब सम्बन्ध की जो कड़ी मेरे गुरुदेव के अनुग्रह के चमत्कारी प्रभाव से इतनी कृपा-पूर्वक काट दी गयी थी उसे ही फिर लगा कर क्या मैं अपनी खुद की बदनामी नही करूँगा? वे मेरे शिष्य हैं यह विचार मुझमें गुरु होने का भाव उत्पन्न करेगा। इसलिए, उस दशा में मेरे द्वारा दिया गया प्रशिक्षण कभी शुद्ध और अहंभाव से मुक्त नहीं होगा और अपनी हैसियत के विरुद्ध कोई भी तिरस्कारपूर्ण या अप्रतिष्ठाजनक बात मुझे रोष से भर देगा। सर्वोत्कृष्ट गुरुदेव हमारी संस्था से सदा इस सबसे बड़ी बुराई को दूर रखें। अब, चूँकि मैं किसी को अपना शिष्य नही समझता, इसलिए उसकी ओर से किसी अभद्र व्यवहार के मुझे नागवार लगने का कोई कारण नहीं है। यदि

आप इसे दिल की आँख से जाँचें, तो आपको पता लगेगा कि यह अनस्तित्व की भावना को बढ़ावा देती है। इस प्रकार हम एकदम शुरू से उसी चीज को पकड़ते हैं जिस तक हमें अन्त में पहुँचना है।

हमारी असली प्रकृति

मन की, जो मनुष्य की जीवन-शक्ति है, अस्पष्ट रूप से कई भिन्न ढंगों से व्याख्या की गयी है। पर यह सब मानते हैं कि वह सभी विचारों, भावनाओं और प्रेरणाओं पर अधिकार रखता है। अधिकतर बुराई की ओर अपनी अनियन्त्रित भटकन के कारण, वह जीव को यथार्थ प्रकृति का सामान्यत: घोर विरोधी समझा जाता है। पर वैसा उसकी असली प्रकृति के कारण नहीं, गलत प्रशिक्षण के प्रभाव-वश है। वास्तव में, मर्यादित और संतुलित अवस्था में मन अस्तित्व की समस्या को हल करने के लिए एक मात्र साधन है।

मन की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विभिन्न मत उपस्थित किये गये हैं। इसके सूक्ष्मतम अस्तित्व का पता सृष्टि के प्रारम्भ जितने पूर्व पाया जा सकता है, जब यह अपनी विशुद्ध अवस्था में, एक क्षोभ या उद्दीपन के रूप में प्रकट हुआ। उस आद्य अवस्था में वह उस मूल-शक्ति से बहुत मिलता जुलता सा था जो सृष्टि को अस्तित्व में लाने के लिए कार्यरत थी। मैंने "राजयोग

का दिव्यदर्शन" (तृतीय संस्करण, पृष्ठ १४ की पादटिप्पणी) में इस बात को इस तरह स्पष्ट किया है :—

"मानव-मन की उत्पत्ति की जैसी व्याख्या इस पुस्तक में की गई है, युक्ति-संगत आधार पर आधारित है। प्रसुप्त ईश्वरेच्छा द्वारा क्रियाशील होकर आद्य क्षोभ अस्तित्व का कारण बन गया। उस क्षोभ ने प्रच्छन्न शक्तियों को गतिमान कर दिया और सृष्टि तथा जीवन का विधान आरम्भ हुआ। वही मूल शक्ति 'क्षोभ' या प्रेरक शक्ति के रूप में प्रकट हो मुख्य कार्यशील शक्ति के रूप में प्रत्येक प्राणी में उतरी। मनुष्य में इस शक्ति को 'मन' कहा गया है, जिसके मूल में वही प्रसुप्त इच्छा है जैसी कि ठीक उस 'क्षोभ' में थी। इस प्रकार मानव मन 'मूल-शक्ति' अथवा आदि 'क्षोभ' के, जिसका वह एक अंश है, बहुत समरूप है। इस तरह दोनों के कार्य भी बहुत समान हैं।"

इस प्रकार मन, विश्व को अपने वर्तमान पार्थिव रूप में लाने के लिए, अंगभूत तत्त्व है, और क्षोभ जो परम तत्त्व के तुरन्त बाद पड़ता है मन है जिसका धर्म में बताया गया प्रयोजन सृष्टि है। सृष्टि के विचार का इसके साथ समावेश कर लिया गया पर सामान्यतः दो विपरीत सदा साथ साथ मिल कर चलते हैं। विकास और अंतर्वलन की प्रक्रिया एक साथ काम करती हैं। जहाँ उत्पादक विकास होता है, वहीं उलटी वृत्तियों की विध्वंसक क्रिया अन्दर प्रसुप्त रहती है। परिणाम स्वरूप

दो प्रकार के बल बने—एक धनात्मक बल जो चीजों को उत्पन्न करता है, दूसरा ऋणात्मक बल। यदि हम अपना अस्तित्व विघटित करने के बाद मूल की ओर अपनी वापसी को पक्का करना चाहते हैं, तो हमें अवश्यमेव अपने को नकारात्मक बनाना है। उसके लिए यही एक मात्र प्रक्रिया है।

यह बात बड़ी अद्भुत लगती है कि प्रकृति में सब कुछ गोल है जिससे शक्ति के प्रवाहित होने के लिए परिपथ बन जाता है। ईश्वरीय संकल्प के अनुसार, क्रियाशीलता से उत्पन्न ताप के माध्यम से प्रजननात्मक वृद्धि निष्पादित करने के लिए धनात्मक बल ऋणात्मक बल के साथ चारों ओर घूमता है। अतिचेतना की अवस्था में मुझ पर यह प्रकट हुआ था कि सृष्टि की प्रक्रिया में लगभग ३० लाख वर्ष लगे थे। इस प्रकार सृष्टि अस्तित्व में आई और गति से उत्पन्न ताप रूपों और आकृतियों के निर्माण का आधार बना। वह हमारे अन्दर भी मौजूद रहता है और सारी संरचना का आधार है। यदि किसी तरह हम इस ताप को सहने योग्य अवस्था में ले आयें तो यह मूल धारा से प्रायः अभिन्न हो जायेगा। कुछ धर्माचार्य आन्तरिक अग्नि को, जो हमें चेतना के वर्तमान तल तक लायी है, जागृत करने की चर्चा करते हैं। पर यह व्याख्या गलत है। वास्तव में, उस ताप या, अग्नि को शान्त करना चाहिए जिससे इसका सृजनात्मक प्रभाव समाप्त हो जाय।

काल का उद्गम भी पीछे जाकर खोजने से, उस बिन्दु पर मिल सकता है जहाँ से सृष्टि अस्तित्व में आई। क्षोभ को क्रियाशील होने में लगा अन्तराल काल है। अपनी पूर्ण विशुद्ध अवस्था में वह एक शक्ति है जिसका योग्यतासम्पन्न योगी उपयोग कर सकते हैं। ऐसा नहीं है कि प्राचीन काल के ऋषियों को इसका पता न था। यद्यपि कुछ अवसरों पर रचनात्मक प्रयोजनों के लिए वे उसका उपयोग करते थे, वे उसको कभी ऐसा बताते नहीं थे। यह बहुत ऊँची उपलब्धि है। जो उसे प्राप्त कर लेता है उसे अन्तरिक्ष पर भी अधिकार मिल जाता है। जब विशिष्ट व्यक्ति के रूप में ईश्वरीय शक्ति मौजूद रहती है तो अतिमानस या अतीन्द्रिय मन, जिसकी अरविन्द ने इतनी अधिक चर्चा की है, वस्तुतः पृथ्वी पर सदा उपस्थित रहता है। वास्तव में, संसार के व्यवहार को पूरी तरह बदलने के लिए उस अतिमानस की नहीं, बल्कि एक अधिक बलवती शक्ति की आवश्यकता है जिसे चाहे तो परमोत्कृष्ट अतिमानस कह लें, जो अति सूक्ष्म है और इसलिए अति शक्तिशाली है। यह सत, रज और तम तीनों गुणों से कहीं अधिक श्रेष्ठ, अत्यधिक क्षमतावान शक्ति है। उससे भी आगे, एक और बड़ी शक्ति है, जिसको प्रकृति के विशेष कार्य के लिए आया हुआ योग्यता-सम्पन्न योगी ही काम में ले सकता है। मेरी राय में, जब तक कोई व्यक्ति दैवी शक्तियों को काम में लेने की योग्यता नहीं रखता हो, तब तक उसने दिव्यता की झलक तक नहीं पाई।

वह धारा, जो सृष्टि को अस्तित्व में लाने के लिए नीचे उतरी, परिशुद्ध अवस्था में थी। हमारा व्यष्टिगत मन उसका सबसे नीचे का छोर था। अब यदि हम दोनों छोरों के बीच पर्यायत्व (बराबरी) स्थापित कर सकें, तो हम वैसी अवस्था में पहुँच जाते हैं जिसके परे केवल परम सत्ता रहती है। एक काफी आगे बढ़े हुए अभ्यासी पर केवल आधे मिनट के लिए मैंने उसकी बहुत सावधानी से, केवल अनुभव के लिए, आजमाइश की थी, और वह भी केवल उस सीमा तक कि उसके निम्न मन की वृत्तियाँ मूल स्रोत की ओर प्रेरित हो जाँय। परिणाम यह हुआ कि उसके हृदय पर इससे इतना अधिक भार पड़ा कि मैं उसे बड़ी कठिनाई से डेढ़ महीने में व्यवस्थित कर सका। मानव के प्राण में जो धारा उतरी, अपनी रुझान के कारण अन्तरिक्ष में से होकर चलती हुई आई थी और बदलती गयी क्योंकि उसने कामों को प्रभावित किया था। जैसा हर क्रिया से होता है, उसने एक केन्द्र बनाया। इस केन्द्र को चित्तसरोवर नाम से जाना जाता है। अपने मतलब के लिये आवश्यक हर चीज को बनाती हुई वह नीचे आई। इस प्रकार वे कारण जिनसे सृष्टि-प्रक्रिया में सहायता मिली, संगठित हुए। चित्तसरोवर ऐसा स्थान है जहाँ हर चीज का झुकाव नीचे की ओर रहता है, ऊपर उठने की प्रवृत्ति होती ही नहीं, जब तक कि उसकी अपनी या गुरु की शक्ति इस पक्ष में सहायक नहीं होती। जब उस

पर वश पा लिया जाता है, तो वह अपनी ऊर्ध्वमुखी प्रवृत्ति फिर प्राप्त कर लेती है।

अब, जो चीज हमारे अस्तित्व के अन्दर समा गयी थी उसने हलके कम्पन उत्पन्न किये, जिससे एक सौम्य शक्ति उत्पन्न हुयी जो परमाणुओं के माध्यम से विशुद्धि चक्र में प्रवेश कर जाती है। विविध नामों से जाना जाने वाला यह चक्र पिंड और ब्रह्माण्ड प्रदेशों का संगमस्थल है और माया का आसन है। वहाँ अपरिमित शक्ति प्रतिष्ठित है। जब उसका विचार इस प्रदेश का स्पर्श करता है, तब मनुष्य को स्वप्न आने लगते हैं। अग्नि-केन्द्र निकट ही स्थित है। प्राचीन शास्त्रीय छः रागों में से एक दीपक राग, जिसके गाये जाने पर बुझी बत्ती जल उठती है, इसी बिन्दु से छेड़ी जाती है। जब वह इस बिन्दु से हृदय में उतरती है, तो वह अपने साथ माया की अवस्था को लाती है पर उससे आगे की अवस्था भी उसमें प्रसुप्त दशा में मौजूद रहती है। अब वह तीन शाखाओं में विभक्त हो जाती है। बीच की शाखा थोड़ा नीचे की ओर बढ़ती है और उस जगह पर जहाँ बिन्दु A स्थित है एक तरह की गाँठ जैसी शक्ल ले लेती है। बाकी दो शाखायें दाहिनी और बाईं ओर जाती हैं। बाईं ओर वह दिल के नीचे वाले हिस्से में प्रवेश करती है। यदि चमत्कार दिखाने वाली क्षमता को विकसित करना है, तो आदमी धारा के उस भाग से अपने को जोड़ ले सकता है जो

मायावी दशा से सराबोर है। पर मैं यहाँ यह प्रकट कर दूं कि केवल ध्यान से इस तरह की चमत्कारी शक्ति विकसित हो सकती है, बशर्ते कि वह ईश्वरीयता या दिव्य उपलब्धियों के चिन्तन से शून्य हो। यह केवल एक इशारा है, जिसका और खुलासा करने की मेरी मंशा नहीं है। ध्यान से चमत्कारों को विकसित करने की विधियों का भागवत पुराण में भी वर्णन है, पर उसका अन्त भगवान विष्णु के इस कथन से होता है: "जो भक्ति द्वारा मुझे पाने की कामना करते हैं उन्हें मैं भी मिल जाता हूँ और चमत्कार भी।" और यह केवल शुद्ध तथ्य है। मैं यहाँ इस प्रसंग की, कि अग्नि, वायु और दूसरे तत्त्व कैसे अस्तित्व में आये, चर्चा नहीं कर रहा हूँ क्योंकि शास्त्रों में इसका पर्याप्त विवेचन किया गया है।

अब यदि हम धारा के माध्यम से, जो हमें नीचे ले आई थी, ऊपर की ओर अपनी राह बलपूर्वक निकालने की कोशिश करें, तो अभ्यासी के लिए यह बड़ा कठिन काम होगा। इसलिए हम एक दूसरा रास्ता अपनाते हैं, पहले हम बिन्दु नं० २ की ओर बगल से बढ़ते हैं और तब एक के बाद एक करके बिन्दु नं० ३, ४, ५ की ओर। इस प्रकार उन बिन्दुओं में स्थित उप-शक्तियों का उपयोग करके हम दुष्कर कार्य के लिए अधिक बलवान हो जाते हैं। विशुद्धि-चक्र का क्षेत्र पार करने के बाद हमारा रास्ता सीधा हो जाता है क्योंकि हम शक्ति से परिपूर्ण

हो जाते हैं और दैवीकरण की प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है। दैवीकरण से मेरा आशय है कि सारी संवेदनायें और कार्य-क्षमतायें, अपनी मूल अवस्था धारण करके संतुलित हो जाती हैं और असलियत में मिल जाती हैं। दैवीकरण की अन्तिम अवस्था तब आती है जब शरीर का प्रत्येक परमाणु असलियत या परम सत्ता के साथ एकाकार हो जाता है।

गीता

समय बीतने के साथ मन की सीधी साधी विनम्र प्रकृति बदल गयी है, उसने एक रंगीली प्रवृत्ति धारण कर ली और अपना प्रभाव हमारे भीतरी बाहरी सब कुछ पर डालना शुरू कर दिया है। इसलिए हम अपने विचार या कार्य में जो कुछ भी लाते हैं वह अपने सभी पक्षों में रंगीनी प्रदर्शित करता है। उसी प्रकार के वातावरण और परिवेश से हमारी अतिशय आसक्ति हमारे अन्दर भारीपन और जड़ता उत्पन्न करते हैं। सूक्ष्मता समाप्त हो जाती है और हमारे सामने जो कुछ आता है उसी दृष्टि से समझा जाता है। यह केवल हमारी समझ को ही नहीं ढकता बल्कि हमारे हृदय और मष्तिष्क भी इससे प्रभावित हो जाते हैं। ज्ञानियों और पण्डितों की रचनाओं में मन की यही प्रवृत्ति प्रकट हुई है। क्योंकि चीजों की पूरी जानकारी के लिए, 'आदमी को मन की अपेक्षित अवस्था

व्यवहार में प्राप्त करनी पड़ती है। तभी वह दूसरों को इसे समझा कर बता सकता है। हमारी पवित्र गीता के साथ भी यह बात थी। उस पर अनेकानेक टीकायें हैं, और नई नई अब भी लिखी जा रही हैं। प्रायः हर किसी ने अपनी विद्वता और युक्ति के तल से टीका लिखने का प्रयत्न किया, उसी तल से लोगों को समझाने के लिए। इस कारण से उनकी मेहनत कुछ हद तक प्रशंसनीय हो सकती है पर इससे उनका असली मतलब तो बिलकुल पूरा नहीं होता। और साफ कहें तो शुद्ध सत्य को आवरणों और भ्रान्तियों में रख कर उन्होंने मूल रचना को और भी जटिल बना दिया है। दूसरे शब्दों में अधिकाधिक जटिलतायें बढ़ा कर हम अपने बन्धन बढ़ा लेते हैं।

ईश्वर की पूजा को लेकर भी यही बात है। ईश्वर शरीरतः मनुष्य के समान चित्रित किया जाता है। अन्तर केवल इतना ही है कि वह उत्कृष्ट प्राणी है और अपनी महत्ता के अनुरूप उसका क्षेत्र अधिक विशाल है। पर उस विषय पर इस समय न कह कर मैं अपने को प्रस्तुत विषय तक सीमित रखता हूँ।

समय की माँग के अनुरूप, भगवान कृष्ण ने गीता में वर्णित सत्य को अर्जुन पर प्रकट किया। हमारे लाभ के लिए उन्होंने जो कुछ हमारे सामने रखा—जो कालान्तर में हम सब के लिए पथप्रदर्शक आलोक हो गया है—उसके लिए हमें उनका बहुत

आभारी होना चाहिए। यह केवल थोथा प्रवचन नहीं था बल्कि ईश्वरीय मार्ग की सच्ची साधना के लिए जिस विशेष तत्त्व की जरूरत थी उसका वास्तविक उद्घाटन था। उनका सम्बन्ध उन विविध दशाओं से है जिनसे होकर अभ्यासी अपने यात्रा-क्रम में गुजरता है। इसका सम्बन्ध उन दशाओं के व्यावहारिक अनुभव से है, जिन्हें उचित साधना द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। पर आज भी संसार में ऐसी उन्नत आत्माएँ मौजूद हो सकती हैं जो आपको उसकी एक झलक दिखला दें या अपनी आन्तरिक शक्तियों के प्रयोग द्वारा आप में भी तत्काल वैसी ही अवस्था उत्पन्न कर दें।

आइये यहाँ हम इस बात पर विचार करें कि गीता जैसी आज हमारे सामने है उसके सारे श्लोकों को सुनाने में भगवान कृष्ण को कितने समय की जरूरत पड़ी होगी। युद्ध क्षेत्र में सेनायें आमने सामने खड़ी थीं और युद्ध की भेरियाँ, आक्रमण-बेला की घोषणा करती हुई, जोरों से बज रही थीं। उपदेश देकर अर्जुन को सही रास्ते पर लाने के लिए भगवान् कृष्ण के पास कितना समय था? पूरी गीता के श्लोक सुनाने में कई घण्टे लगते। उस नाजुक मौके पर, यह कैसे सम्भव था? स्पष्ट है कि इसके लिए उन्हें कुछ मिनटों से अधिक समय नहीं मिल सकता था। सच तो यह है कि उस समय के प्रयोजन के लिए आवश्यक सारी मानसिक दशाओं को कृष्ण ने कुछ मिनटों में

अर्जुन के अन्दर संचारित किया। वास्तव में वे वही दशायें थीं जिनके बीच से अभ्यासी अपने यात्रा-क्रम में गुजरता है। यह प्रक्रिया अर्जुन को तुरन्त आध्यात्मिक चेतना के उच्चतर तल पर ले आई और उसने उसके हृदय से अनुचित मोह को बाहर निकाल फेंका। यदि वैसी योग्यता से सम्पन्न कोई विशिष्ट व्यक्ति मौजूद हो, तो यह आज भी सम्भव हो सकता है। पर, जैसा बहुत सामान्य रूप से देखा जाता है, लोग जीवन भर, बिना उसका तनिक भी प्रभाव ग्रहण किये, गीता पढ़ते और सुनते रहते हैं। वर्षों तक गीता सुनते रह कर भी, आज तक भी कोई अर्जुन के समान नहीं बदला। कारण यह है कि जो दूसरों को सुनाते हैं उनमें सुनने वालों के हृदय में गीता के सत्य को संप्रेषित करने की क्षमता नहीं रहती, जिसके कारण श्रोताओं पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इस उद्देश्य के लिए यह आवश्यक है कि वर्णित दशाओं तक सुनाने वाले की व्यवहारतः पहुँच हो और स्वर को रोमांचक बनाने के लिए उसमें आवश्यक दृढ़ संकल्प और आध्यात्मिक बल हो जिससे संप्रेषण-प्रक्रिया द्वारा ध्वनि का प्रभाव सीधे सुनने वाले के हृदय में पहुँचाया जा सके। केवल तभी श्रोताओं के लिए पाठ-श्रवण उपयोगी हो सकता है।

जहाँ तक गीता के उपदेशों की बात है, हम उच्च कोटि और ख्याति के आचार्यों और उपदेशकों से यही सुनते आये हैं

कि मनुष्य को कभी अपने कार्यों का वास्तविक कर्ता नहीं मानना चाहिए। पर साथ ही साथ यह भी बिलकुल स्पष्ट है कि इसके केवल पढ़ने या सुनने का कोई लाभ नहीं, जब तक कि हम व्यवहार में उसे प्राप्त करने के साधन नहीं अपनाते। पर इस मतलब के लिए आवश्यक साधनों के विषय में हम सदा अंधेरे में रहते हैं। उनके सारे प्रवचनों में इस सम्बन्ध में एक हलका इशारा भी खोजे नहीं मिलता। परिणाम यह होता कि सुनने वाले गलती से इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि "मैं कर्ता नहीं हूँ" इन शब्दों को बार बार दुहराते रहना ही उनके लिए पर्याप्त और सब कुछ है। वस्तुतः यह मन की एक आन्तरिक अवस्था है जिसमें अभ्यासी के भौतिक कर्मों की उसके हृदय पर छाप नहीं पड़ती। फलस्वरूप, कर्ता की भावना उनके अन्दर उठती ही नहीं। जब छाप नहीं पड़ती, तब संस्कार नहीं बनते और परिणामतः भोग के प्रसंग नहीं खड़े होते। इस तरह संस्कारों का बनना रुक जाता है। अध्यात्म-मार्ग वालों के लिए यह बहुत आवश्यक है। वस्तुतः यही वास्तविक अवस्था थी जो अर्जुन में संचारित की गयी थी और जिसके प्रसाद से वह उच्चतर चेतना के उस तल तक तुरन्त ऊपर उठ गया था। उस समय, प्राणाहुति के माध्यम से अर्जुन द्वारा प्राप्त दशा को दिखाने के लिए सूक्ष्म संकेत देने वाले केवल सात श्लोक जबानी कहे गये थे।

गीता में वर्णित आत्मा की अवस्था इसी बात का और अधिक स्पष्टीकरण है । जब किसी को वह अवस्था वास्तव में प्राप्त हो जाती है तो वह सर्वत्र बराबर उसी का अनुभव करने लगता है। वही वास्तव में आत्मानुभव की सच्ची स्थिति है। गीता में निष्काम कर्म पर बहुत जोर दिया गया है। यह हो सकता है कि एक आदमी सदा वही बात कहता रहे फिर भी अवस्था का उसके अन्दर तब तक विकास न हो जब तक उसकी प्राप्ति के साधनों और विधियों को न अपनाये। वास्तव में यह एक तरह की लयावस्था है, जिसके बिना जैसा विराट रूप का दर्शन अर्जुन को हुआ था कभी संभव नहीं होता, यद्यपि अभ्यासी में उचित क्षमता और समुन्नत अन्तर्दृष्टि का होना भी इस प्रयोजन के लिए आवश्यक है। विराट रूप का दर्शन मिलने पर अर्जुन को भी चिल्ला कर कहना पड़ा था कि मैं इस भयानक रूप को नहीं सहन कर पा रहा हूँ। इसका कारण यह था कि जो लयावस्था उसमें संप्रेषित की गयी थी उसका संबन्ध विराट देश की दशाओं से था, जब कि जिस रूप का दर्शन वह कर रहा था वह ब्रह्माण्ड-मण्डल के, जो विराट देश के बहुत आगे है, पूरे बल का प्रदर्शन था। वास्तव में, यह वह क्षेत्र था जहाँ से हर वस्तु पार्थिव तल पर उतरती है। वहाँ महाभारत-युद्ध का सारा खाका सूक्ष्म रूप में मौजूद था। यही वह दृश्य था जिसे कृष्ण ने अर्जुन को, पहिले उसे उस तल तक ऊपर उठाकर, दिखाया। कुछ लोगों का मन इस

पर उस तरह विश्वास करने को न हो, और इसके लिए उनके अपने कारण हो सकते हैं। पर मैं उन्हें विश्वास दिला दूँ कि यद्यपि सामान्यतः इसके व्यावहारिक प्रमाण की कमी हो सकती है, यह आज भी सम्भव और व्यावहारिक है बशर्ते कि इतनी योग्यता वाला विशिष्ट व्यक्ति विद्यमान हो और स्वयं साधक उस तल तक उठाये जाने की क्षमता रखता हो।

गीता कर्त्तव्य के, जो संसार की सामाजिक व्यवस्था का आधार मात्र है, महत्त्व पर भी बल देती है। यह राजयोग के अधिकार-क्षेत्र में आता है और संस्कारों को समाप्त करने में बहुत सहायक है। जब सारी इन्द्रियाँ शान्त हो जाती हैं, तब वह अवस्था प्रारम्भ होती है। इसके लिए केवल कहना या सुनना किसी मतलब का नहीं। इसका तो केवल अभ्यास करना है और इसके लिए बहुत विशाल हृदय चाहिए। थोड़े से समय में इतनी आसानी से मिलने वाला यह नहीं है। इसके लिए लगातार परिश्रम और समुचित साधन आवश्यक हैं। हो सकता है कि जो यहाँ मैं कह रहा हूँ उस पर लोग ध्यान न दें; पर असलियत, जो समय के कारण जटिलताओं से ढक गयी है, जल्द उद्घाटित होगी और लोग उसका सच्चा महत्त्व अनुभव करने लगेंगे। ईश्वर करे वह समय शीघ्र आये।

अंध श्रद्धा के लाभ भी हैं, हानियाँ भी। वह बहुत काम की होती है यदि पथ-प्रदर्शक, जिसे चुना गया है, सचमुच बहुत

योग्यता वाला हो और उच्चतम स्थिति तक पहुँच गया हो। पर यदि दुर्भाग्यवश आप ऐसे (पथ-प्रदर्शक) के साथ जुड़ जाते हैं जो अपेक्षित योग्यता वाला नहीं है, पर जिसने आपको अपने पांडित्यपूर्ण प्रवचनों या चमत्कार-प्रदर्शन से फँसा लिया है, तो उसके प्रति आपकी अंध-श्रद्धा आपको ठीक उलटी तरफ, भ्रान्ति और धोखे में ले जायेगी। उस दशा में, उसकी कमियाँ भी आपके ध्यान में इसलिए नहीं आयेंगी कि आपने बिना सोचे समझे उसका अनुसरण करने का संकल्प किया है। परिणाम यह होगा कि आप ध्येय तक नहीं पहुँच सकेंगे। इसलिए हर आदमी को किसी में श्रद्धा रखने के पहले बार बार विचार करना आवश्यक है। मेरी राय में, जब हमारी किसी ऐसे आदमी से भेंट होती है जिन्हें हम अपने मार्ग प्रदर्शन के लिए सक्षम समझते हैं, तो पहले हमें उनकी संगति में पर्याप्त समय तक रहना चाहिए, यह जानने के लिए कि उनके संग से हमारी मनोवृत्तियाँ किस हद तक प्रभावित हुईं अर्थात् क्या वे धीरे धीरे शान्त होती जा रही हैं या उनकी सामान्य प्रवृत्ति पूर्ववत् बनी हुई है। हमें यह समझने की कोशिश करनी चाहिए कि क्या उनका साथ हमारे दिल पर वही असर डाल रहा है जो उसे अन्त में डालना लाजिम है। अधःपतन के वर्तमान युग में ऐसे पथ-प्रदर्शक या गुरु निःसन्देह दुर्लभ हैं और इस पर अधिकार रखनेवाले तो और भी दुर्लभ हैं। अशान्ति और क्षोभ वतमान समय की प्रधान विशिष्टतायें हैं। इसके लिए

बड़ी हद तक आधुनिक सभ्यता भी उत्तरदायी है। अब इस अव्यवस्था को दूर करने के लिए काफी समय और मेहनत की जरूरत है। यह केवल दिव्य गुरु के प्रति सच्चे प्रेम और भक्ति से दूर किया जा सकता है और इसके लिए यही हर तरह से अचूक साधन है और सफलता का सुनिश्चित रास्ता है।

लगाव और श्रद्धा

सीता के पास एक तोता था। वह उसे बहुत प्यार करती थीं। वह मर गया। उनके पिता, राजा जनक, अपनी बेटी सीता से बहुत प्यार करते थे। इसलिए, सीता के कारण वे भी दुःखी हो गये। इससे कुछ लोग इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि राजा जनक जैसे महान् संत को तोते से अनावश्यक लगाव हो गया था। इसके लिए उनकी चाहे जो कैफियत हो, पर मैं यह विश्वास करता हूँ कि यदि दूसरों के कष्ट पर कोई दुःखित नहीं होता तो वह सामान्य अर्थ वाली मानवता से शून्य है या दूसरे शब्दों में वह मनुष्य ही नहीं है। इसलिए मैं उन स्वयंसिद्ध ज्ञानियों से, जो लोगों को माता, पिता, भाई या पुत्र को शत्रुवत् मानने को प्रेरित करते हैं, सहमत नहीं हूँ। स्वयं मैं किसी भी कीमत पर उस सिद्धान्त को मानने के लिए उन्मुख न होऊँगा। उनका मत चाहे जो हो, मेरी राय में वे लोगों को ऐसी शिक्षा

देकर जो अन्त में उनके पवित्र उद्देश्य के लिए अनिष्टकर होगी, केवल उनको उलझनों में घसीटे लिये जा रहे हैं। इसका अभ्यास करने से घृणा और विरक्ति की भावना उत्पन्न होगी जो हमारे आध्यात्मिक प्रयोजन के लिए समान रूप से अहितकर है।

अभ्यास के लिए जो सचमुच आवश्यक है वह है माया-मोह या शारीरिक आसक्ति की भावना को वश में करना। पर घृणा और विरक्ति प्रेम के ठीक उलटे हैं और आसक्ति भी उसी कोटि में आती है या अधिक उपयुक्त अर्थ में, उसी चीज का दूसरा छोर है। इसलिए आसक्ति की जगह उसके उलटे, विरक्ति या घृणा, को लाना निरर्थक है और ऐसा करने से कोई कभी माया-मोह के भाव से मुक्त नहीं हो सकता। उसका सही विकल्प केवल कर्तव्य, जो आसक्ति और विरक्ति दोनों से मुक्त है, हो सकता है। इसलिए यदि उनके प्रति अपने कर्तव्य के उचित निर्वाह की दृष्टि से यदि कोई पिता को पिता, माता को माता, और पुत्र को पुत्र की तरह मानता है तो इसमें कोई गलती नहीं है। तब वह दोनों ही भावनाओं से मुक्त रहेगा। वास्तव में यह वही स्थिति है जो रहनी चाहिए।

मेरी समझ में नहीं आता कि लोग कैसे एक दम शुरू की उपलब्धि को अपने लिए पूर्ण और पर्याप्त मान लेते हैं और उसको लेकर घमंड करने लगते हैं, यद्यपि दूसरी ओर अपने मंचों से अभिमान और घमंड के विरुद्ध काफी प्रवचन देते हैं।

शायद शास्त्रों का उनका अव्यावहारिक ज्ञान इसके लिए उत्तरदायी हो। सामान्यतः ऐसे लोग, जो आध्यात्मिक क्षेत्र में कोई महत्वपूर्ण उपलब्धि पाने के पूर्व ही दूसरों को अध्यात्म सिखाने में लग जाते हैं, इस बुराई के शिकार होते हैं। अभिमान या घमंड अहंभाव की विद्यमान श्रृंखला में एक और कड़ी बन जाता है। इस भारी बुराई से बचने के लिए सच्ची प्रार्थना द्वारा, जैसी हमारे 'मिशन' में निर्धारित है, अपने को सीधे ईश्वर के सम्पर्क में रखना चाहिए। यदि कोई इस प्राथमिक सिद्धान्त की उपेक्षा करता है, तो मैं समझता हूँ कि उसे अभ्यास में कोई रुचि नहीं है, केवल मन-बहलाव या मनोरंजन के लिए वह उसमें लगा है।

दृढ़ संकल्प और अदम्य साहस पुरुषोचित स्वभाव के आवश्यक लक्षण हैं। अंतिम सफलता के लिए उनकी जरूरत है। पर इस विषय की मेरी सलाह पर साधरणतः कोई ध्यान नहीं देता। शायद यह साहित्यिक ज्ञान में, जिसको लोग पहुँची हुई आत्मा में सामान्यतः सबसे मूल्यवान् मानते हैं, मेरी कमी के कारण हो। पांडित्य और ज्ञान का अपना महत्व होता है और उनसे संपन्न लोगों का बहुत सम्मान होता है। मैं भी उनके लिए आदर-भाव रखता हूँ और इसी कारण हर औपचारिक ढंग से उनकी प्रशंसा करते हुए उनके साथ नम्रता का व्यवहार करता करता हूँ। लेकिन स्वयं अपने लिए मुझे

कभी ज्ञान की लालसा नहीं रही। फिर भी, स्पष्ट कहूँ तो मैं अपने में किसी तरह के ज्ञान की कोई कमी नहीं पाता और मानता हूँ कि वह पूर्ण रूप से मुझमें है। कारण यह है कि मेरे महान् गुरुदेव ने उनके पास जो कुछ था वह सब मुझे संप्रेषित कर दिया, और उसमें ज्ञान भी शामिल था। अतएव मैं अनुभव करता हूं कि निम्नतम से लेकर उच्चतम तक, हर तरह का ज्ञान मेरे अधिकार में है, चाहे अपनी बातचीत में परिभाषिक शब्दावली के प्रयोग में मुझमें कमी हो। पर यह मेरी प्रकृति और चित्तवृत्ति की विनम्रता है, जिसकी नकल मैने अपने गुरुदेव से की है, जो इसे आवरण में छिपाये रखती है। वास्तव में किताबों या शास्त्रों से ग्रहण किया हुआ ज्ञान, सच्चे अर्थ में कोई ज्ञान है ही नहीं। वह दूसरों के अनुभवों पर आधारित विद्वत्ता मात्र है—केवल मष्तिष्क की उपलब्धि, न कि आत्मानुभव पर आधारित व्यावहारिक ज्ञान और हृदय की उपलब्धि। असली ज्ञान के सच्चे जिज्ञासुओं को इसे मार्गदर्शक प्रकाश के रूप में लेना चाहिए। मेरे साथ ऐसा इसलिए हुआ कि ज्ञान की प्राप्ति के लिए प्रयास करने की जगह मैं बराबर अपने दिव्य गुरुदेव को, जो ज्ञान और पूर्णता के भंडार थे, पाने में लगा रहा। यही कारण है कि अपने सारे विचारों और कथनों में मैं असलियत से कभी दूर नहीं हुआ।

आत्म-साक्षात्कार की अवस्था

बहुत से मार्गों के विषय में घोषणा की जाती है कि वे सर्वश्रेष्ठ और सबसे अधिक कारगर हैं और वे सब निःसन्देह यह दावा करते हैं कि आत्म साक्षात्कार उनका ध्येय है। पर यहाँ हम सब को थोड़ा रुक कर उन्हें हृदय की आंख से परखना चाहिए। मैं 'हृदय' शब्द का इस्तेमाल कर रहा हूँ क्योंकि वह नाभिक है और उस ओर कंपनमय गति उत्पन्न करता है जिसकी ओर वह निदेशित होता है। यह मन के काम करने का क्षेत्र है और यही वह औजार है जिसके द्वारा हम विवेचन-शक्ति को विकसित करते हैं। इस प्रदेश में सूक्ष्म शक्तियाँ दिव्य ऊर्जा के अवतरण के लिए काम करती हैं। यदि किसी प्रकार हमारी विचारधारा उससे जुड़ जाती है या हम विचार-धारा को ऐसा बना लें कि वह सही चीज में रिस जाती है और उसे असलियत की ओर मोड़ देती है, तो समस्या हल हो जाती है। पर यह असंभव है जब तक कोई 'आत्म-साक्षात्कार क्या है' इसे स्पष्ट जानने की कोशिश नहीं करता है। प्रत्येक धर्मपरायण व्यक्ति और वैज्ञानिक अन्वेषक इस मत का है कि जो काम कर रही है वह सूक्ष्मतम शक्ति है। अपने मार्ग-भ्रष्ट विचारों से अपने चारो ओर जो जड़ता आपने इकट्ठी कर ली है, उससे दूर होने पर, आप भी इसे आसानी से जान सकते हैं। अब आप आसानी से इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं

कि सूक्ष्मता की ओर बढ़ने में यदि सहायक होती है तो विधि ठीक है। पर यदि वह आपकी जड़ता बढ़ाने लगती है तो वह न केवल गलत है, बल्कि वह आपको नीचे खींचती है और आत्म-साक्षात्कार बहुत दूर हो जाता है।

चमत्कार अवश्य घटित होते हैं। उनको दो शीर्षकों के अन्तर्गत वर्गीकृत किया जा सकता है—एक दिव्य प्रकृति के, दूसरे सांसारिक प्रकृति के। पहले का उद्देश्य सदा आध्यात्मिक होता है, जब कि दूसरे का सांसारिक। पहले प्रकार के चमत्कार उस पर अभिव्यक्त होते हैं जो सूक्ष्मता के आधार पर आगे बढ़ता है, और वे जीवन की समस्या को, जो हम सबके सामने खड़ी है, हल करते हैं। दूसरी ओर जड़ता के आधार पर आगे बढ़ने वाले लोग दूसरे प्रकार के चमत्कारों को विकसित करते हैं जिनसे हृदय बहुत भारग्रस्त हो जाता है। पर यदि कोई निम्नतर उपलब्धियों की दशाओं में निमग्न हो जाता है तो (यों कहें कि) वह समग्र रूप से एक ग्रन्थि बन जाता है और उसमें, उसके खुद के डूबने के लिए, एक भँवर बन जाती है। यदि उस शक्ति का दूसरों पर प्रयोग किया जाता है तो वे भी उसी भँवर में खिच जाते हैं। मैं साफ़ शब्दों में बता देता हूँ कि जिनको ईश्वरीय काम सौंपा जाता है उनमें सूक्ष्म प्रकार के चमत्कार विकसित होते हैं। हमारी संस्था में गुरुदेव में अडिग श्रद्धा रखने वाला शायद ही कोई ऐसा अभ्यासी मिले जो सूक्ष्म

चमत्कारों से शून्य हो। पर गुरुदेव का हाथ उसे नियंत्रण में रखता है और दायें बायें किसी ओर नहीं देखने देता कि वह कहीं भटक न जाय। उसे उनका पता तक नहीं रहता। पर वे उसकी जानकारी में तब आ जाते हैं जब उसे सौंपे हुए ईश्वरीय काम की प्रकृति को चमत्कार घटित करने वाले उस केन्द्र के, जहाँ से केवल दिव्य प्रकार के चमत्कार उत्पन्न होते हैं, जाग उठने की जरूरत पड़ती है। इस बिन्दु पर मैं अधिक विस्तार में नहीं जाऊँगा। इतना ही कहना काफ़ी होगा कि यदि कोई किसी को सही रास्ते पर ले आ सके तो यही बहुत बड़ा चमत्कार है।

सहज मार्ग की पद्धति बिलकुल सीधी और सहज है, पर सामान्य लोगों की समझ के बाहर है क्योंकि यह विशुद्ध असलियत से बहुत नजदीकी से जुड़ी रहती है और अति सूक्ष्म तरीकों से आगे बढ़ती है। वह दिव्य प्रकाश का विचार रखते हुये हृदय पर ध्यान का निर्देश देती है। पर अभ्यासी को बिजली की रोशनी या चन्द्रमा के प्रकाश जैसे किसी रूप या आकृति में प्रकाश की धारणा करने से मना करती है। क्योंकि उस दशा में हृदय में जो प्रकाश प्रकट होगा वह वास्तविक न हो कर उसका प्रक्षिप्त किया हुआ होगा। अभ्यासी को केवल इसकी कल्पना के साथ और तल में दिव्यता के विचार के साथ आगे बढ़ने की सलाह दी जाती है। तब क्या घटित होता है ? वह बहुत सूक्ष्म हो जाता है। परिणाम यह होता है कि इस

तरह हम सूक्ष्मतम का, जिसे हमें पाना है, ध्यान करते हैं। प्रत्येक संत ने 'प्रकाश' शब्द का प्रयोग किया है और मैं भी उससे बच नही सकता क्योंकि 'असलियत' को व्यक्त करने के लिए वही सबसे उपयुक्त शब्द है। पर उससे कुछ उलझन पैदा हो जाती है क्योंकि जब हम प्रकाश की बात करते हैं, तब चमक का ख्याल सामने आ जाता है और हम उसे चकाचौंध करने वाले रूप में लेते हैं। पर 'असली प्रकाश' के साथ ऐसी कोई बात नहीं होती। वह तो केवल यथार्थ सार का, या अधिक उपयुक्त शब्दों में 'सारहीन सार' का द्योतक है। हमारी पद्धति में अभ्यासी निस्सन्देह कभी कभी प्रकाश देखता है। पर चमकदार प्रकाश केवल प्रारम्भ में दिखाई पड़ता है जब पदार्थ ऊर्जा के सम्पर्क में आता है। दूसरे शब्दों में वह केवल इस बात का संकेत है कि ऊर्जा क्रियाशील हो गयी है। जैसा मैंने "राजयोग का दिव्य दर्शन" में बताया है, असली प्रकाश में ऊषा का रंग या वर्णहीनता की एक हलकी झाईं होती है।

इस पद्धति के अन्तर्गत स्थूलता दूर करने पर बहुत बल दिया जाता है जिससे आत्मा के चारों ओर मँडराने वाली कालिमा छँट जायें। वह मिशन के सभी प्रशिक्षकों के लिए उनके कर्त्तव्य का महत्त्वपूर्ण भाग है। पर अभ्यासी को इसके लिए बहुत कुछ करना रहता है, जिसे इस प्रयोजनार्थ एक विधि बतायी गई है। हम हृदय-पर क्यों ध्यान करते हैं यह प्रसंग

में छेड़ना नहीं चाहता क्योंकि अन्यत्र पहले ही इसका विवेचन हो चुका है।

बहुत से विद्वान् संतों ने अनेक अटपटे ढंगों से आत्म-साक्षात्कार की अवस्था को परिभाषित करने की कोशिश की है; पर मुझे लगता है कि यदि उसे परिभाषित किया जा सके तो वह आत्म-साक्षात्कार है ही नहीं। यह सचमुच एक मूक अवस्था है जो वर्णन के परे है। भीतर या बाहर दीप्ति देखना या अनुभव करना आत्म-साक्षात्कार नहीं है। अपने अभ्यास के प्रारम्भ में मुझे अक्सर दीप्ति का दर्शन और अनुभव होता था। पर मेरा तो वह ध्येय था नहीं। जैसा डा० के० सी० वरदाचारी ठीक ही (हमारी पद्धति के सम्बन्ध में) व्यक्त करते हैं, मैं तो अपने गुरुदेव के सजग आश्रय में 'प्रकाश से धूसरता' की ओर बढ़ता चला गया। जिस ओर हम अन्ततः यात्रा कर रहे हैं, वास्तव में वह दीप्ति के अर्थ में प्रकाश है ही नहीं, पर वह तो ऐसा ध्येय है जहाँ न अंधकार है न प्रकाश, जैसा हमारे मिशन के चिह्न में चित्रित है। सम्भवतः वह क्या हो सकता है— शब्दों से परे है।

अपने बोध में, प्रत्येक मानव हृदय की आन्तरिक अभिलाषा 'असल' की प्राप्ति है। 'अज्ञात' की ओर आरोहण के लिये हमारे पास यही सीढ़ी है। जब वह अभिलाषा पूर्ण हो जाती है तब हम अपने लिए भी अपरिचित हो जाते हैं। इस प्रकार

हम एक विस्मृति की अवस्था में प्रवेश करते हैं जहाँ स्व-भाव बिलकुल विस्मृत हो जाता है और शरीर अथवा आत्मा का बोध एकदम लुप्त हो जाता है। अस्तित्व के संस्कार जो हृदय को बोझिल बनाते हैं सब धुल कर बह जाते हैं। कोई सोच नहीं पाता कि मैं क्या हूँ या दूसरे क्या हैं। सम्बन्धों की कड़ी टूट जाती है और वह अपने को किसी से जुड़ा हुआ नहीं अनुभव करता। संक्षेप में उसका अपना अस्तित्व मात्र विसर्जित हो जाता है। वह काम करता है पर उनकी छाप उस पर नहीं आती। संस्कारों का निर्माण बन्द हो जाता है और वह उनके प्रभाव से मुक्त हो जाता है। इस प्रकार वह निष्काम कर्म की अवस्था को प्राप्त कर लेता है, जिसका भगवान कृष्ण ने गीता में इतना सुन्दर विवेचन किया है। इस मुकाम पर, सृष्टि के अस्तित्व में आने से पूर्व की व्याप्त अवस्था से मिलती हुई प्रायः सन्तुलित दशा को वह व्यक्ति प्राप्त कर लेता है। उसका हृदय एकदम शान्त है और मन अनुशासित। वह ब्रह्म में इतना लीन है कि एक क्षण के लिए भी उससे बिछुड़ना नहीं चाहता। इसलिए अब वह अपने या ईश्वर पर ध्यान भी नहीं लगा पाता। पर यदि वह कुछ समय तक ध्यान लगाने का प्रयत्न करे भी, तो साँस फूलने लगेगी क्योंकि वह घनत्व शून्य क्षेत्र में तैर रहा है। उस अवस्था में, लोग कहते हैं, आत्म-साक्षात्कार हो जाता है; पर यह गलत धारणा है क्योंकि तब आदमी को पता रहता है कि मैं क्या हूँ और इसी पर लोग

बहुत बल देते हैं। उस मुकाम पर होता यह है कि शरीर के कोश ऊर्जा में, और अन्ततः उसकी परावस्था में, रूपान्तरित होने लगते हैं। कोई मनोहरता, आकर्षण या (शब्द के सामान्य अर्थ में) आनन्द नही रहता। वह एक स्वादहीन, अपरिवर्तमान और स्थिर अवस्था होती है। अधिक उपयुक्त शब्दों में उसे "संग-ए-बेनमक"—नमक का ढोका जिससे नमकीन स्वाद निकाल दिया गया हो—कहा जा सकता है।

आत्म-साक्षात्कार की अवस्था प्राप्त होने पर व्यक्ति में, आध्यात्मिक क्षेत्र में अचूक संकल्प-शक्ति विकसित हो जाती है। यद्यपि वह विस्मृति की अवस्था में रहता है, पर वह (एक सीमित अर्थ में) संसार के सारे विज्ञान-शास्त्रों का ज्ञाता होता है। ईश्वर सब चीजों का ज्ञाता है और जो उसमें लीन होता है उसे भी (मानवी सीमाओं के अन्दर) ज्ञाता होना ही चाहिए। यद्यपि गुरुदेव सीमाएँ तोड़ देते है, पर मानवता का बोध समाप्त नहीं होता और सहजवृत्ति बराबर बनी रहती है क्योंकि यदि सहजवृत्ति भी लीन हो जाय तो मनुष्य शरीर का तत्काल त्याग कर देगा। अतः उस अवस्था में, जैसी परिस्थिति की मांग होती है वह ऊपर या नीचे दोनों ओर नजर फेरता है। इसलिए असीम की प्राप्ति के लिए दृष्टि भी असीमित होनी चाहिए और उसको पाने की विधि भी सही होनी चाहिए।

सहजमार्ग-पद्धति के अन्तर्गत चक्रों और उपचक्रों की ऊर्जा जागृत हो जाती है ताकि वे ठीक से काम करने के योग्य हो सकें। जब ऊपर के चक्र जागृत हो जाते हैं, तो वे नीचे के चक्रों पर अपना प्रभाव डालने लगते हैं; और जब वे दिव्यता के संपर्क में आते हैं तो नीचे के चक्र उनमें विलीन हो जाते हैं।

इस प्रकार ऊपर के चक्र नीचे के चक्रों की निगरानी अपने हाथ में ले लेते हैं। नीचे के चक्र भी निर्मल कर दिये जाते हैं जिससे वे उस जड़ता से, जो उन्हें ढके रहती है, मुक्त हो जायें केवल यही स्वाभाविक क्रम है और मैं समझता हूँ कि सहज-मार्ग में अनुसरित उपाय को छोड़ कर और किसी उपाय से ऐसे परिणाम नहीं मिल सकते। यदि अभ्यासी ने इसके लिए क्षमता बिकसित कर ली है, तो मिशन का कोई प्रशिक्षक, जिसकी गुरु में दृढ़ श्रद्धा है, ऐसे परिणाम एक क्षण में उपस्थित कर सकता है।

इस मुकाम पर, अनेक अलग-अलग प्रकार की अवस्थायें आती हैं जो हमारे प्रयाण-क्रम में एक के बाद एक प्राप्त होती हैं। पर वहाँ जो दशा रहती है वह वैसी होती है कि यदि अभ्यासी अपनी कोशिश से अगली दशा में पहुँचने का यत्न करता है तो वह दिव्य ऊर्जा के तेज प्रवाह के सामने टिक नहीं

पाता और तुरंत नीचे सरक जाता है। योग्यतासंपन्न गुरु की शक्ति मात्र उस पर अधिकार पाने के लिए अभ्यासी को ऊपर उठा सकती है। बहुत आगे की अवस्थाओं में प्रवाह और जोरदार हो जाता है क्योंकि ईश्वरीय ऊर्जा अधिक सूक्ष्म हो जाती है और सूक्ष्मतर बल स्वभावतः अधिक शक्तिशाली होता है।

सामान्यतः विद्वान लोग—यद्यपि मैं उनका बहुत आदर करता हूँ—आत्म-साक्षात्कार और उसकी दशा के बारे में अपना मत अपनी विद्वत्ता के आधार पर व्यक्त करते हैं, अपने अनुभव-सिद्ध ज्ञान के आधार पर नहीं जो ही वास्तव में विश्वसनीय है। उस कारण से, मैं अफ़सोस के साथ कहता हूँ कि आत्म-साक्षात्कार आजकल एक कला हो गया है। असलियत बहुत नीचे दब गयी है, केवल उसका बाहरी आवरण कलाकारों के लिए अपनी मानसिक रुचि और कौशल के अनुसार, विविध रंगों से रंगे जाने के लिए बचता है। परिणाम यह होता है कि लोग अपना ध्यान केवल उन्हीं चित्रों पर जमाते हैं और उनमें इस हद तक मग्न हो जाते हैं जो न आध्यात्मिक होता है न असली। मेरी मान्यता है कि आत्म-साक्षात्कार के विषय को किसी को तब तक छूने का अधिकार नहीं होना चाहिये जब तक सही अर्थ में उसने उसे प्राप्त न कर लिया हो, जिसके कारण दिव्य ज्ञान उसमें जागृत हो गया है।

दिव्य-दृष्टि

हर किसी को आदमी को मिली दो आँखों के बारे में पता है। पर विज्ञानवेत्ता कहते हैं कि आदमी के ललाट में आँख की आकृति की एक ग्रंथि होती है जिसका संबन्ध दिव्य-दृष्टि से होता है और जो आदमी की तीसरी आँख के रूप में जानी जाती है। मानव-शरीर की चीर-फाड़ से जो कुछ अब तक जाना जा सका है उससे पूरी जानकारी नहीं होती। उसकी सही जानकारी केवल योग द्वारा हो सकती है। महर्षि पतञ्जलि ने अपने ग्रन्थ में संयम की विधि का, जिसे वे योगी के हाथ का सबसे बड़ा अस्त्र कहते थे, वर्णन किया है। इसकी सहायता से, आध्यात्मिक शक्ति द्वारा, योगी अपने शरीर के अन्दर की हर चीज और हर दशा की जानकरी प्राप्त कर सकता है। वह शरीर में काम करती हुई सारी मशीनरी को देख सकता है। शरीर के किसी भाग का पूरा चित्र उसकी नजर के सामने आ जाता है। और जहाँ कहीं जिस किसी भी शक्ति का वह प्रयोग करना चाहता है, कर सकता है। कोई बात या चीज, चाहे वह कितनी ही नन्हीं क्यों न हो, उसकी नजर से छिपी नहीं रह सकती। देखने की विधि यह है : जिस किसी जगह की जानकारी योगी पाना चाहता है, वह उसे अपनी संकल्प शक्ति से बाहर निकाल लेता है और उसके पूरे प्रभाव को. वातावरण में फैला देता है। तब

वह इसे विस्तार में ध्यानपूर्वक देखता है। इस तरह, वह जो देखना चाहता है उसका पूरा चित्र उसको मिल जाता है; और इसमें उसे समय भी बहुत कम लगता है। निस्सन्देह उसके प्रभाव को देखने और समझने में कुछ समय लगता ही है।

अब मैं इस दिव्य दृष्टि के बारे में योग द्वारा प्राप्त अपनी जानकारी और अनुभव पाठकों के सामने रख रहा हूँ। इस ग्रन्थि में, जिसे मध्य-नेत्र कहा जाता है, तीन रंग देखने में आते हैं। सामने का भाग चमकीला होता है और इसकी संरचना बालू के कणों जैसी होती है। यह बाहर का भाग बुद्धि का अधिष्ठान है। इसके पीछे का यानी बीच का भाग गहरे बैगनी रंग का होता है। सबसे पीछे का भाग लालिमा का रंग लिये होता है और दिव्य प्रज्ञा का अधिष्ठान होता है। यौगिक अभ्यास में सबसे पहले बाहर का चमकीला भाग खुलता है। जब किसी व्यक्ति को उसमें पूरा प्रवेश मिल जाता है तब बीच का भाग खुलने लगता है और अधिक प्रभावान होने लगता है, पर उस प्रभा में बैगनी रंग की एक झाईं निश्चयतः बनी रहती है। अन्त में, जब अन्तिम भाग के खुलने की बारी आती है, वह भी अधिक प्रभावान हो जाता है। जो योगी इन सब दशाओं को प्राप्त कर लेता है, वह ऊँची योग्यता वाला योगी समझा जाता है। जैसे जैसे वह आगे बढ़ता है, दोनों रंग समाप्त हो जाते हैं और केवल एक दशा अर्थात् चमकीलापन बना रहता है। यह स्थान

शुक्र ग्रह से जुड़ा रहता है; और जिसे इस पर अधिकार मिल जाता है उसे शुक्र ग्रह पर भी अधिकार मिल जाता है। इस ग्रन्थि का मेरुदण्ड से कोई सम्बन्ध नहीं है, पर हृदय के दाहिने पक्ष से सम्बन्ध है। जब यह जगह एक दम खुल जाती है और उसके अन्तर्गत सारे चक्र निर्मल हो जाते हैं, तो दिव्य प्रज्ञा का अवतरण प्रारम्भ हो जाता है। इसी कारण, योग में, इस स्थान को बुद्धि का अधिष्ठान कहा गया है। इस जगह से थोड़ी दूर एक और बिन्दु है। जब वह सक्रिय हो जाता है तो अन्दर की चीजों का अनुभव बहुत प्रभावशाली हो जाता है। इसका अर्थ है कि वायुमण्डल में मँडराते हुए अच्छे या बुरे विचारों को भी कोई अनुभव कर सकता या जान सकता है। यह स्थान दूसरे लोगों की आंतरिक आध्यात्मिक दशा को जानने में भी सहायक होता है। इसका रंग भूरा सा होता है। इस स्थान पर पहुँचने के बाद हमारा बौद्धिक प्रयास समाप्त हो जाता है और आध्यात्मिक क्षेत्र प्रारम्भ होता है। इसमें पूर्ण विलीनता मिलते ही, इसका भूरा सा रंग गायब हो जाता है और यह जगह भी थोड़ी अधिक चमकीली हो जाती है। इसके बाद की ग्रन्थि में कोई रंग नहीं होता। हम इसे कुछ धौले से रंग से मिला हुआ कुछ अधिक सफेद या दूसरे शब्दों में न हलका न गहरा कह सकते हैं। इसकी सहायता से, भौतिक जगत में होने से पहिले ब्रह्मांड-मंडल में सूक्ष्म रूप में घटित होने वाली घटनाओं की हमें

जानकारी प्राप्त हो सकती है। पर यह केवल तब सम्भव होता है जब हमें इस दशा पर पूर्ण आधिपत्य प्राप्त हो गया हो।

एक तीसरी आँख होती है जिसके बारे में कहा जाता है कि यदि वह खुल जाय तो एक क्षण में सारे संसार को भस्म कर सकती है। वह ऊपर की किसी ग्रन्थि से नहीं जुड़ी हुई है। यह संहारकारी आँख, जिसको सामान्यतः भगवान शिव से सम्बद्ध किया जाता है, सिर के पिछले भाग में अनुकपालीय प्रदेश में स्थित है। मैंने अपनी पुस्तक "राजयोग का दिव्य दर्शन" में इसका वर्णन किया है। भगवान कृष्ण ने इस नेत्र को महाभारत के युद्ध में लगातार अट्ठारह दिनों तक खुला रखा था और यही महान् नर-संहार के घटित होने में निमित्त बना।

हृदय पर ध्यान

भौतिकता के इस युग में अध्यात्म ने एक भिन्न वृत्ति अपनायी है। प्रयोगात्मक मूल्य हमेशा असली चीज के पहले आता है। आजकल संत की असली कसौटी उसकी असली आन्तरिक दशा नहीं बल्कि बाहरी दिखावा है। आध्यात्मिक प्रशिक्षण के पुराने ढंग एक तरफ कर दिये गये हैं क्योंकि आन्तरिक अवस्थाओं के मूल्यांकन शायद ही कभी उपलब्ध होते हैं। इसलिए अब पहिले पाठकों को जीवन में अपनाने योग्य ठीक तरीकों को समझाना आवश्यक हो गया है। इसलिये

ऐसा कुछ लिखने की जरूरत पड़ गयी है जिससे पाठक उन सच्चे आधारों का अनुमान लगा सकें जिन पर प्रशिक्षण का सारा ढाँचा खड़ा रहता है। मेरी पुस्तकें इस विषय में मेरे निजी अनुभवों के आधार पर लिखी हुई हैं। मैंने अनावश्यक टिप्पणियाँ बचाते हुए, केवल आधारभूत चीजों का विवेचन किया है। पर उनमें जो लिखा गया है वह, जो काम मैंने हाथ में लिया है उसके सही अनुपात के अनुरूप है।

सामान्यतः मैं हृदय के उस बिन्दु पर ध्यान करने को कहता हूँ, जहाँ आप उसकी धड़कन सुनते हैं। मैं ध्यान की दृष्टि का विस्तार हृदय के सारे प्रदेश तक नहीं करना चाहता। इसलिए ध्यान करने के लिए अभ्यासी को हृदय को इस तरह समझना पड़ता है। बिन्दु A और B भी ध्यान के अन्य केन्द्र हैं, पर मैंने सबके लिए उन्हें निर्धारित नहीं किया है क्योंकि शुरू की मंजिल में वे अनावश्यक हैं। हमें अपनी प्यास पानी पीकर बुझानी पड़ती है, उसके कारण पर सोच विचार कर नहीं। मैंने हृदय को दो भागों में बाँटा है, पर उनके ब्योरों का चर्चा नहीं की है, उन्हें तो अभ्यास द्वारा व्यवहारतः समझना पड़ेगा। हाँ, मिशन के प्रशिक्षकों को अवश्य वे सब विस्तार पूर्वक स्पष्ट कर दिये गये हैं क्योंकि उन्हें उनकी सहायता से ही काम करना पड़ता है। प्रकृति की विविध शक्तियाँ हृदय में छिपी पड़ी रहती हैं पर वह एक रहस्य है जिसे प्रकाशित

नहीं किया जा सकता क्योंकि ऐसा होने पर उसके माध्यम से प्राप्त शक्ति का दुरुपयोग हो सकता है।

अपनी यात्रा के दर्मियान हम 'सत्य का उदय' में बताये गये वृत्तों में होकर गुजरते हैं। आप प्रत्येक परमाणु में भी इन वृत्तों के साथ सारे विश्व की झलक पायेंगे, पर उसको ठीक से समझने के लिए काफी समय और अनुभव की जरूरत पड़ती है। इसलिए हमें अपनी नजर असल तत्त्व पर रखनी चाहिये, उसके द्वारा प्रदर्शित वस्तु पर नहीं। हृदय के नीचे और ऊपर के प्रदेशों को दिखाने वाला रेखाचित्र, समझने के लिए केवल काल्पनिक आधार है। हृदय की अधोमुखी दशा आगे चलकर कैसे ऊर्ध्वमुखी हो जाती है, यह समस्या आसानी से समझ में नहीं आ पाती। यदि मैं इस रहस्य को स्पष्ट करना चाहूँ तो सिवाय यह कहने के कि अवस्था बदल जाती है और जीवन रूपान्तरित हो जाता है, शब्द ही बड़ी मुश्किल से मिलेंगे। तब हृदय, दोषपूर्ण मानसिक क्रिया-कलापों का क्षेत्र होने के बदले, प्रकृति का स्थल हो जाता है। हर चीज असलियत में बदल जाती है। हृदय की स्थिति भी बदल जाती है, यद्यपि भौतिक हृदय अपनी जगह पर ही रहता है। यह कहना कि L (नीचे वाला) U (ऊपर वाला) हो जाता है अधिक संदिग्धता उत्पन्न करेगा, पर उसे समझाने के लिए केवल 'मौन' शब्द का प्रयोग संभवतः सबसे अधिक कारगर होगा। मैं आपसे

उस पुस्तक को फिर से पढ़ जाने के लिए कहूँगा। यदि आप वैसा करेंगे, तो आपको अपने सारे प्रश्नों का उत्तर मिल जायेगा। अपना सबसे अधिक प्रिय मत आपके सामने रखते हुए, मैं यह कहता हूँ कि संसार कैसे अस्तित्व में आया इस पर माथापच्ची करने के बजाय हमें उस सत्ता की महिमा बखाननी चाहिए जिसने इसे रचा। इस आश्चर्य-भावना से यह रहस्य आप पर खुल जायेगा कि सृष्टि कैसे हुई। पर कब ? केवल तभी जब आप असल सत्ता को उसकी असली अवस्था में जान लें। यदि आप पेड़ की पत्तियाँ गिनने में लग गये तो हो सकता है कि आप शीघ्र ही पहले की गिनती भूलने लगें। इस तरह तो उनमें जो फल लगे हैं उनके स्वाद का आपको कभी पता ही नहीं लगेगा। यदि आप पत्ती की जाँच करना चाहते हैं तो ज्यादा अच्छा होगा कि उसमें जो फल लगा है उसकी जाँच करिये। उसकी जाँच कैसे की जाय ? आज के युग का साधन है प्रयोगशाला में परीक्षण, पर प्राचीन विधि है उसके प्रभाव का अनुभव पाने के लिए उसको खाना और पचाना। इसलिये आपको अगस्त्य मुनि के समान पूरा समुद्र पी जाने की क्षमता विकसित करनी होगी। यदि आप छोटे नालों का पानी पीते रहे तो हो सकता है कि पूरे समुद्र को पी डालने का, बल्कि उसके तट तक भी पहुँचने का, आपको समय व आयु ही न मिले।

अतः सबको मेरी यही सलाह है उसकी खोज करो जो तुम्हें खोज रहा है, उसकी नहीं जिसका रवैया तुम्हारी उपेक्षा करने की ओर है।

मन का नियन्त्रण

भारत अध्यात्म का स्वदेश है। इसलिए यहाँ विचार-विमर्श हर युग में सक्रिय रहा है। अब वह समय आ गया है जब मनुष्य की सुप्त शक्तियाँ आध्यात्मिक तल में अधिक गहराई की ओर झुक रही हैं। अध्यात्म के आधार पर मनुष्य की सारी संरचना करने में संसार का भी अपना भाग है। आज की सबसे अधिक उत्साहवर्धक बात यह है कि सभी लोग शान्ति का मार्ग खोज रहे हैं। संसार के कुछ भागों में इतनी विपुल सम्पदा होने पर भी, शान्ति का अभाव है। शान्ति पाने के लिए व्यर्थ ही बाहरी साधन अपनाये जाते हैं। शान्ति की खोज में जब तक हम अन्तर्मुखी नहीं होते, तब तक हमें उसका एक कण भी न मिलेगा। शान्ति पाने के लिए विविध साधन, अपनी अपनी तबियत के माफ़िक, अपनाये जा रहे हैं।

आज के गुरु अधिकतर मन को वश में लाने का भार शिष्य पर छोड़ देते हैं जो अभ्यासी के लिए दुष्कर समस्या बन जाती है। परिणाम यह होता है कि वह कठिनाइयों से पार पाने में असमर्थ होता है। ऐसे मामलों में गुरु समझते हैं कि हमारे

लिये करने को कुछ है नहीं। दूसरे शब्दों में, जो कर्तव्य गुरु का होता है उसे शिष्य के ऊपर डाल दिया जाता है।

योग मार्ग में परिणाम बहुत जल्द घटित होते हैं, यदि किसी में उसके साथ ही साथ सच्ची भक्ति भी हो, क्योंकि भक्ति के साधन से कोई 'प्रियतम' से बहुत जल्दी जुड़ जाता है। 'प्रियतम' का ध्यान बना रहता है, और इससे मनुष्य को अधिक गहरी चेतना में उतरने में सहायता मिलती है। यदि किसी तरह हमें ऐसा गुरु मिल जाय जो ब्रह्मनिष्ठ होने से प्राप्त आन्तरिक शक्ति द्वारा हमें परिपक्व कर सकता हो, तो कठिनाई अधिकतर समाप्त हो जाती है और हम जल्दी ही असल सत्ता की झलक पाने लगते हैं। विभिन्न नामों की योग की अनेकानेक विधियाँ हो सकती हैं। मैं योग की पुनर्निर्मित विधि सहज मार्ग के नाम से उपस्थित कर रहा हूँ।

अभ्यासी को दिव्य प्रकाश को हृदय के भीतर मान कर हृदय पर ध्यान करने की सलाह दी जाती है। गुरु मल (स्थूलता, जड़ता), विक्षेप (चंचलता) और आवरण (परदे) हटा कर सारे (शरीर-) तन्त्र की सफाई करते रहते हैं और अभ्यासी के लिए उसकी पूरी आध्यात्मिक यात्रा में बहुत सहायक होते हैं।

हम मुख्य स्रोत से निकल कर नीचे आये हैं और जब हम वहाँ लौटना चाहते हैं तो हमें, विभिन्न चक्रों को पार करते हुए,

ऊपर चढ़ना होगा। मैं यहाँ सहज मार्ग की तकनीक का नहीं बल्कि उन थोड़ी चीजों का विवेचन कर रहा हूँ जो उन लोगों के लिए आवश्यक हैं जिन्होंने अपने स्वयं से ऊपर उठने की तबियत कर ली है। सहज मार्ग के अन्तर्गत प्रशिक्षण कारण शरीर से प्रारम्भ होता है, जहाँ संस्कार बीज रूप में पड़े रहते हैं अभ्यासी के अन्दर जो विचार उठते हैं, हम उनका दमन नहीं करते बल्कि हम नाड़ियों और चित्तसरोवर तक के प्रत्येक केन्द्र को निर्मल करने का प्रयत्न करते हैं। चित्तसरोवर की तली तक को, जहाँ से विचार प्रारम्भ होते हैं, हम साफ करने का प्रयत्न करते हैं। यह सम्भव है कि संकल्प-शक्ति द्वारा विचार-लहरियों को बन्द कर दिया जाय। पर यदि हम किसी तरह लहरों को बन्द करने में सफल हो जाते हैं तो वह पदार्थ, जिससे वे उत्पन्न होते हैं, ऐसे ही बना रहेगा और यदि वह दूर नहीं किया जाता, तो मुक्ति सम्भव नहीं है। हमें सहज ढंग से आगे बढ़ना चाहिए जिससे जड़ का विष दूर किया जा सके। हमारे सहयोगी भी विचारों के आक्रमणों की शिकायत करते हैं पर साथ ही साथ वे इसलिए खुश भी रहते हैं कि वे विचारों को कम विघ्नकारी पाते हैं।

जैसा हमारे शास्त्र कहते हैं, हम मुक्ति केवल तभी पा सकते हैं जब हम अतीत के संस्कारों के बन्धन से छूट जाँय। वर्तमान काल के संस्कारों पर तो हमारा इतना अधिकार हो जाता है

कि आगे कोई संस्कार बनने ही नहीं पाते। निःसन्देह यह एक आध्यात्मिक दशा है। और सहज मार्ग में यह दशा हमें आसानी से मिलती है जब हम चेतना की गहराई में उतरते हैं।

मन जिन विचारों का निर्माण करता है, वे अतीत के संस्कारों के भोगोन्मुख होने में बहुत सहायक होते हैं। कुछ लोगों को यह भय हो सकता है कि यदि हम यौगिक साधन अपनाते हैं पर हमारे संस्कारों के अनुचिह्न बने रहते हैं, तो हम अधिक कठिनाई में पड़ सकते हैं और हम व्याधियों, रोगों और दुर्घटनाओं से ग्रस्त हो सकते हैं। उनका डरना सही हो सकता है। पर यदि ऐसा कुछ घटित होता है, तो वैसी दशा में गुरु की उपस्थिति व्यर्थ हो जायेगी। अभ्यासी स्वयं उनकी तीव्रता कम करने के लिए प्रयत्न करता है, और गुरु की शक्ति भी बड़ी सीमा तक उन्हें दग्ध करने में अभ्यासी की सहायता करती है। यह विधि पाठकों को अपरिचित लग सकती है पर यह प्राचीन विधि है जो अब तक दबी पड़ी थी। भोग का प्रभाव उतना गम्भीर नहीं होता जितना अभ्यासी समझता है, बावजूद इस बात के कि न जाने कितने संस्कार भोग के लिए उठ कर ऊपर आ जाते हैं। शरीर-तन्त्र की सफाई का ही मतलब है इन सब चीजों का दूर होना। शरीर-तन्त्र की सफाई से ईप्सित परिणाम बहुत जल्द आता है और 'सूक्ष्मतम' से मिलन के लिए हम दिन प्रति दिन अधिक हलके और सूक्ष्म होते जाते हैं।

प्रकृति की कार्यशाला

संसार ईश्वर का जीवित प्रतिरूप है, जिसमें सर्वत्र उसकी शक्ति काम कर रही है। प्रकृति की विशाल कार्यशाला काम के लिए आवश्यक सभी औजारों से सुसज्जित है। मशीनों को चलती रखने के लिए केन्द्र से शक्ति प्रवाहित होती रहती है। हर तरह के काम के लिए अलग अलग मशीने हैं। शक्ति प्रवाहित होती रहती है पर उसे अपने संकल्प और आशय और घटनाओं का कोई पता नहीं रहता, और अन्त में सामान्य ढंग से निर्धारित परिणाम निकल आते हैं। किसी बाहरी कारणवश या अपने किसी भाग के त्रुटि पूर्ण कार्य-संपादन से, बीच मार्ग में जो अनाहूत हस्तक्षेप, दुर्घटना या अवरोध आ खड़े होते हैं, उनकी इसे (शक्ति को) कोई परवाह नहीं होती। इसलिए मशीनरी के कुशल कार्य-संपादन के लिए यह आवश्यक है कि उसके सारे भाग ठीक हों और उनमें से कोई ढीला या दोषपूर्ण न हो। इसके लिए मिस्त्री, सुपरवाइज़र और नियामक की हैसियत वाले अधीनस्थ कर्मचारी काम में लगे रहते हैं। उनका काम है अलग अलग हिस्सों की क्रियाओं का उचित नियमन और व्यवस्थापन। ये कर्मचारी कौन हो सकते हैं? कोई कह सकता है कि वे देवी-देवता होंगे। निश्चयतः ऐसा नहीं है। देवी-देवता, मशीन के विभिन्न भागों के समान वस्तुतः प्रकृति की विविध शक्तियाँ हैं। वे अपने निर्धारित

कार्यक्रम का, बावजूद हर और चीज के, अनुसरण करते रहते हैं और उसके आगे एक इंच भी जाने की उनकी क्षमता नहीं है। मूल कर्मचारी मनुष्य स्वयं है। उसको ही प्रकृति-यन्त्रावली के उचित नियमन और उसके विभिन्न भागों के सही कार्य-संपादन की देखभाल करनी पड़ती है। कुछ लोगों को इस बात पर अचंभा होगा, पर यह असंदिग्ध तथ्य है।

मनुष्य प्रकृति का औजार है। उसमें अपरिमित शक्ति है और उस शक्ति के उपयोग के लिए उसके पास आवश्यक उपकरण भी है। वह अद्भुत उपकरण मन है और वह केवल मनुष्य के पास है। पूजन के पात्र समझे जाने वाले देवताओं के पास भी मन नहीं होता। हाँ, पशुओं के पास मन होता है पर वह भिन्न प्रकृति का होता है। यों कह सकते हैं कि मनुष्य के मन की तुलना में, जो स्फूर्ति और क्रियाशीलता से परिपूर्ण होता है, पशुओं का मन निष्क्रिय अवस्था में रहता है। मन की सृष्टि का कारण प्रथम 'क्षोभ' था। वह सृष्टि को अस्तित्व में लाने के ईश्वरीय संकल्प से घटित हुआ। मानव मन की प्रकृति ऐसी होते हुए, उसको बड़े कटु शब्दों में बुरा भला कहना और उसे मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु घोषित करना, इन नकली महात्माओं के लिए बहुत लज्जाजनक है। वे उसके सही मूल्य और उपयोग का विचार नहीं करते।

वास्तव में चीजों को क्रियाशील बनाने के लिए वही एक मात्र औजार हैं। यह वही दिव्य शक्ति है जो 'क्षोभ' के रूप

में नीचे उतरी थी। यह लघु रूप में वही शक्ति है जिसने अब मनुष्य की नन्ही सृष्टि को साकार किया है। हर चीज के मूल में वही शक्ति कार्यरत है। अब, वह शक्ति है किसकी ? क्या वह ईश्वर की है या मनुष्य की ? उत्तर सीधा है। निश्चयतः वह शक्ति मनुष्य की है क्योंकि ईश्वर के पास कोई मन नहीं होता। यदि ईश्वर के पास मन होता, तो वह भी संस्कारों के प्रभाव के अधीन होता। इसलिए मानवीय मन ही मूल में काम करता है। अब, मानवीय मन की बुराइयों के बारे में हम बहुत कुछ सुनते हैं, पर वह सब उसकी वर्तमान अधोगति की दशा के सन्दर्भ में हो सकता है। वास्तव में हमने मन को इतना बिगाड़ डाला है कि उसकी यथार्थ प्रकृति प्रायः गायब हो गयी लगती है और इसलिए वह हमारे लिए बराबर परेशानी का कारण बन गया है। इस प्रकार, प्रकृति की मशीनरी के ठीक कार्य सम्पादन में सहायता देने की जगह, वह केवल अवरोध या बाधा का काम करता है। इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मन, जो सामान्यतः सारी बुराइयों का कारण समझा जाता है, ठीक ढंग से सँभाले जाने पर, उनका एक मात्र इलाज भी है।

प्रायः सारा संसार यह मानता है कि जब संसार की पूरी अधोगति हो जाती है, तब संतों, पैगंबरों और अवतारों के रूप में कोई विशिष्ट व्यक्ति इस धरती को, मानव मन की-

बहकी हुई वृत्ति के बुरे प्रभाव से मुक्त करने के लिए, धरती पर अवतीर्ण होता है। इस प्रकार प्रकृति का कार्य, मानवीय रूप में प्रकट होने वाली केवल किसी विशिष्ट सत्ता के माध्यम से संपादित हो सकता है, क्योंकि केवल उसी के पास मन होता है जो चीजों को सक्रिय बनाने का एक मात्र औजार है। पर जो मन उसके पास होता है वह विशुद्ध, 'क्षोभ' के रूप में दिव्य शक्ति के प्रायः सदृश, होता है।

वास्तव में मन और माया केवल वे दो पदार्थ हैं जिन पर प्रकृति-यंत्रावली का सारा कार्य-संपादन आधारित है। पर उन्हीं का नौसिखिये एकदम गलत वर्णन करते हैं। वे नहीं जानते कि यही दो मुख्य तत्त्व हैं जो हमें दिव्यता तक पहुंचने योग्य बनाते हैं। वास्तव में मानवी-सत्ता के एक छोर पर मन है और दूसरे छोर पर माया। दोनों साथ जुड़ कर असलियत के महासागर के किनारे तक की हमारी यात्रा के लिए बेड़े का काम देते हैं। लोग मुझे महासागर की बात करते सुनकर अचंभा कर सकते हैं क्योंकि अब तक हर किसी को सदैव यथार्थतः में निमग्न रहने का विचार रखने को प्रेरित किया गया है। शास्त्रों में भी इस बिन्दु पर पर्याप्त स्पष्टीकरण नहीं है। असलियत को एक प्रदेश के रूप में चित्रित किया जा सकता है, जिससे होकर मनुष्य को अपनी यात्रा के दौरान गुजरना पड़ता है। दूसरे किनारे पर उतरने के बाद भी

हमारी यात्रा जारी रहती है। कितनी दूर तक ? कोई भी उसका ठीक निर्धारण नहीं कर सकता । 'किनारा' शब्द ही हमारे मन में एक विस्तृत प्रदेश का विचार लाता है, किनारा जिसकी केवल सीमा रेखा है। यह प्रदेश कहाँ तक फैला हुआ है, कल्पनातीत है। अब तक हम महासागर में यात्रा कर रहे थे। पर जब तक हम बेड़े पर थे, प्रातःकालीन शीतल समीर और जल के स्फूर्तिदायक प्रभाव का आनन्द लेते हुए हमारी यात्रा बड़ी मजेदार थी। वह इतनी लुभावनी लगती थी कि हर कोई ऐसी मजेदार यात्रा करना चाहेगा। उससे उसे एक तरह की संतुष्टि, मन की शांति जैसी कोई चीज, मिलती दिखती थी और इसे 'आनन्द' नाम से जाना जाने लगा।

अब हम वीरान तट पर उतर पड़े हैं। पानी की ताजगी गायब हो गयी है । न मजेदार मंद पवन है न नन्हीं लहरें, जिनसे भावनायें जागृत होतीं। कोई संमोहन, आकर्षण, मजा नहीं रहता; हर वस्तु से शून्य वीरान उजाड़ के अलावा कुछ और नहीं रहता। वह भी आनन्द का एक स्रोत है, पर एक भिन्न प्रकार के आनन्द का। पहले वाले आनन्द से उसका भेद रखने के लिए, मैं उसे विशुद्ध आनन्द कह सकता हूँ। यह उतार चढ़ाव से रहित, निरन्तर, परिवर्तनरहित और असल होता है।

इस अनन्त प्रदेश में चलते हुए यथा समय व्यक्ति ऐसे बिन्दु पर पहुँचता है जो मनुष्य की उत्पत्ति का बिन्दु है और जो अवतारों के लिए भी अलभ्य रहा है। तब आनन्द की यथार्थ अवस्था प्रकाश में आती है और यह शब्दों से परे होने के कारण किसी भी तरह व्यक्त नहीं की जा सकती। व्यावहारिक रूप में इसको केवल अनुभव किया जा सकता है। वहाँ तक पहुँचने पर आदमी अपने को खोया हुआ महसूस करने लगता है। पर प्रकृति का रहस्य होने से वह उन्हीं पर प्रकट होता है जो प्रकृति से एकाकार हो जाते हैं।

अब यात्री अपने मार्ग पर बढ़ता जाता है, अपने को उपलब्ध सारे साधनों का उपयोग करते हुए। उसके पास मन और इन्द्रियाँ रहती हैं, जिन्हें सेवा में लगाना है। सेवा भक्ति की आधार-शिला है। पर केवल वही सब कुछ और काफी नहीं है। सेवा का संकेत इन्द्रियों सहित भौतिक शरीर के काम की ओर है। पर पृष्ठ-भूमि में मन भी है और यही चीज उसमें भी होनी चाहिए। कोई कह सकता है कि शरीर के सभी काम मन की क्रिया के अधीन होते हैं। तो जब शरीर सेवा में लगा है तो मन भी उसके साथ रहेगा ही। पर मेरा यह आशय नहीं है। मेरा मतलब है कि यदि वह प्रेम और सहानुभूति के भावों से क्रियाशील होता है तब उसका काम सही होगा, नहीं तो वह केवल औपचारिक होगा और किसी स्वार्थमय उद्देश्य से

संयुक्त होगा। उस दशा में परिणाम बिलकुल उलटा होगा। हमारा मूल उद्देश्य भक्ति बढ़ाना है और उसके लिए सेवा केवल एक साधन है। हम सच्चे अर्थ में सेवा तब करते हैं जब हमारा उद्देश्य शुद्ध और सच्चा होता है। उसके साथ कर्तव्य और प्रेम के भाव लगे हुए रहते हैं, दोनों के एक दूसरे से अवियोज्य होने के कारण।

कुछ और लोग हो सकते हैं जो सेवा के लिए मुस्तैद नहीं होते पर जिनके हृदय में दूसरों के लिए कोमल भाव होते हैं। कम से कम एक हद तक वह भी अच्छा है, यद्यपि उनका केवल एक पैर से चलना कहा जा सकता है। मेरी मंशा उन बहुत ऊँची आत्माओं की ओर संकेत करने की नहीं है जो ईश्वर-तत्त्व में दृढ़तापूर्वक प्रतिष्ठित हैं और अपने हृदय में 'उसके' अतिरिक्त और किसी का विचार नहीं आने देते। ऐसी आत्मायें सचमुच बहुत दुर्लभ हैं; और कर्तव्य भाव से उनके लिये कुछ भी अनकिया नहीं रहता। उनका हृदय प्रेम की तीव्रता से घायल रहता है और उन्हें खुद इसका भान नहीं रहता। क्या करने का है, क्या नहीं, यह निश्चय करने की स्थिति में वे नहीं होते। पर उस चरम अवस्था को प्राप्त करने के बाद, उन्हें भी सेवार्थ वापस लौटना पड़ता है, यद्यपि थोड़े भिन्न ढंग से। उस समय उनकी सेवायें सबोध ज्ञान से परे होती हैं और सेवा का भाव भी उनके मन में रहता नहीं प्रतीत होता। सारा

काम स्वतः और स्वयंप्रेरित, बिना किसी सबोध विचार या प्रयास के, होता है।

उस उच्चतम अवस्था की प्राप्ति के लिए यह जरूरी है कि अपने हृदय की आवाज मूलाधार पर सुनाई पड़े। यह कैसे हो ? सीधा उत्तर है यथासंभव नजदीकी हासिल करना। वह कैसे प्राप्त हो ? उसके लिए अभ्यास के अलावा और कोई उपाय नहीं है। अभ्यास से दृढ़तापूर्वक जुड़ने का एक मात्र उपाय है अपने को अनन्त से जोड़ना, या उससे जोड़ना जो अनन्त से जुड़ गया है और जिसने पूर्णता की अवस्था प्राप्त कर ली है। जब आप इस तरह अपने को जोड़ लेते हैं तो इसका अर्थ है कि उस महान विशिष्ट व्यक्ति ने आपको अपने हृदय के भीतर रख लिया है। उसके अन्दर गहरे जाने के आपके प्रयास का मतलब है कि आपने परम सत्ता की ओर का रास्ता पकड़ लिया है। समर्पण शब्द का यही आशय है और समग्र पूर्णता पाने का यही एकमात्र सुनिश्चित साधन है। जब तक किसी काम को करते हुए उसे करने का आपको बोध रहता है तब तक यह सही ढंग नहीं है और आप समर्पण के तल से दूर हैं क्योंकि वहाँ अहं की भावना भी है। समर्पण अहं के सबोध विचार से रहित होता है। वहाँ हर बात मौके की जरूरत के अनुसार, बिना पहले-पीछे किसी विचार के, स्वतः होती रहती है।

पर इस सम्बन्ध में अत्यधिक सावधानी बरतना आवश्यक है। किसी ऐसे के आगे समर्पण, जो स्वयं अपेक्षित योग्यता वाला नहीं है या जो पूर्णता की अन्तिम सीमा तक नहीं पहुँचा है, हमारे चरम उद्देश्य के लिए बहुत हानिकर हो सकता है। पर साथ ही साथ यह निश्चय करना भी कि कोई ऐसा है या नहीं बहुत कठिन है। यह भाग्य की बात है जो संस्कारों के प्रभाव के अधीन होता है। इस सम्बन्ध में प्रार्थना भी सहायक हो सकती है क्योंकि केवल उसी से आप प्रकृति की लहरों में ऊर्मियाँ उत्पन्न कर सकते हैं। उसकी प्रतिक्रिया स्वतः होगी और समाधान स्वतः आयेगा।

सहज मार्ग—एक गतिशील मार्ग

प्रकृति का रहस्य भेदने का मनुष्य का निरन्तर प्रयास रहा है और उससे ज्ञान की सीमायें आगे बढ़ी हैं। और इसलिए, प्रकृति में जो भी वह देखता है ऐसी हर चीज की छानबीन चालू रहती है। जब हम कुछ खोजते हैं तो हमें विचार के लिए कुछ मिलता है और जब हम उसके आगे जाते हैं तो हमें रहस्य के पीछे रहस्य का पता मिलता है। जब चिन्तन का स्वयं और आगे विकास होता है, तो वह हमें बता देता है कि हर चीज़ के पीछे क्या है। हमारे प्राचीन पूर्वजों ने जब उसमें झाँका तो संसार के चरम कारण, मनुष्य और ईश्वर के सम्बन्ध, और प्रकृति को निरूपित करने वाली चीजों के

स्थिर और गतिशील मूल्यों की जानकारी तक वे सीधे पहुंच गये। यदि हम उसमें सचमुच झाँकें तो वहाँ हमें परमाणुओं और कोशिकाओं के रूप में रचनात्मक और विनाशात्मक शक्तियाँ मिलती हैं। वहाँ शक्ति-चाप भी हैं। अपने अस्तित्व का पूरा विवरण देते हुए धनात्मक और ऋणात्मक कोशिकायें भी हैं। हमारे ऋषियों ने रहस्यमय प्रतीत होती हुई इन सारी शक्तियों को रचनात्मक कार्य में उपयोग करने के लिए अपने को प्रतिबद्ध अनुभव किया। वे प्रत्येक वस्तु के परे भी गये जिससे कुछ गतियों के सारी सृष्टि का कारण होने का पता लगा। जब हम इस सीमा तक चले जाते हैं तब केन्द्र और उसका क्षेत्र हमें अपने अस्तित्व की जानकारी देते हुए दिखते हैं। अब हम आगे बढ़ते हैं। उसके ऊपर नीचे क्या है? हमें हर चीज केन्द्र की ओर चलते हुए और केन्द्र स्वयं परिधि की ओर मुँह खोलता हुआ, दिखते हैं। अपने अपूर्व अनुभव के बाद हमें अपने अस्तित्व का मूल्य समझ में आया और अपने चारों ओर विद्यमान उच्चतम शक्ति के सहयोग का अनुभव हुआ। अब देखिये, हमारे चिन्तन की यह मुख्य धारा थी जिसने हमारा ध्यान मुख्य प्रसंग की ओर, जो छेड़ा जा रहा है, मोड़ दिया। धीरे धीरे मानव-शरीर में चाल की क्रिया को हम जान सके। केन्द्रीय क्षेत्र को जाने वाला रास्ता खोल दिया गया।

यदि हम किसी तरह अपनी जीवन-समस्या हल कर लें, तो मेरी राय में हमने रहस्य सुलझा लिया। जब हमने अपना

आत्मदर्शन किया तो पाया कि मनुष्य विश्व का सार-तत्त्व है। इससे हमारी प्रगति को बढ़ावा मिला और हम अपने खुद के चक्रों, उनकी गतियों और कार्य, और मानव मन और शरीर के कृत्यों, का अध्ययन करने लगे। जो शक्ति हमारे अन्दर विद्यमान है वह संहारक प्रयोजनों में भी काम आ सकती है, पर अपने पूर्वजों के द्वारा लिये हुए व्रत के कारण हम उससे एकदम दूर रहते हैं और शक्ति का उपयोग मानव के रूपान्तरण के लिए करते हैं। यदि हम सचमुच रचनात्मक पक्ष की ओर झाँकते हैं तो हमें साथ ही साथ विनाशकारी चीजें भी मिलती हैं। और तटस्थ (तत्त्व) भी हैं जिनका वैज्ञानिकों को अभी अन्वेषण करना है। चूँकि उन चीजों से हमारा कोई सरोकार नहीं है अतः हम उन्हें छोड़ देते हैं। हम रचनात्मक पक्ष की ओर आते हैं। जब हम इस विचार से अपने अन्दर झाँकते हैं तो हम अपने चक्रों पर उच्चतर चक्रों को प्रकाश डालते हुये देखते हैं, पर हमारे गलत चिन्तन और क्रियाओं के कारण उनका प्रभाव बिलकुल नहीं पड़ता। उन चक्रों पर जड़ता की मोटी तह इतनी दृढ़ता से जम गयी है कि वे बिलकुल अभेद्य हो गये हैं। मानव शरीर में न जाने कितने ऐसे चक्र हैं जिनका कार्यचालन आध्यात्मिक भी है और सांसारिक भी। मानव जाति के सामान्य कल्याण के लिए, उनको समझने के लिए शोध करना आवश्यक है। लोग कहते हैं कि यह उन दुर्बल व्यक्तियों का विषय है जो मानव जाति के भौतिक उत्थान के लिए काम

करना और शक्ति लगाना नहीं चाहते। इस प्रकार हममें से अनेक अध्यात्म को बुरा भला कहते हैं और इस क्रम में उदाहरण देते हैं—वर्तमान युग की सभ्यताओं का और उनका जो भौतिकवाद के अनवरुद्ध कदम के साथ कदम मिला कर चलते हैं, और इस प्रकार अपने खुद को सीमित बना लेते हैं क्योंकि वे केवल सीमित को पाने का प्रयत्न करते हैं और इसमें भी पीछे छूट जाते हैं। यह विचार होना चाहिए कि हम सीमित से असीम की ओर बढ़ रहे हैं। विचार तो यह होना चाहिए कि हम सीमित को भी असीम में विलीन कर लें। दूसरे शब्दों में, ससीमता पहले चमकदार होनी चाहिए, तब हम मूल आधार की ओर प्रयाण कर सकते हैं। और ससीमता क्या है? हमारे अन्दर स्थित केन्द्र की अनन्त पकड़नें की क्षमता समाप्त हो गयी है। सहज मार्ग इसका हामी है। वह हमारे लिए अपने कर्तव्य को ससीमता की आवश्यकता के अनुरूप पूरा करना, और साथ ही साथ अनन्त की ओर बढ़ते भी जाना सम्भव बनाता है। वह हम पर यह तथ्य प्रकट करता है कि सबसे अधिक महत्वपूर्ण अपने कर्तव्य का पालन है। इसलिये हमें दोनों चीजों को सही करना चाहिए यानो हमें अपने दोनों पंखों से उड़ना चाहिए। यदि हम केवल सीमित के लिए ही प्रयत्न करते हैं तो हम दोषपूर्ण आधार के साथ आगे बढ़ते हैं। हमें निःसीम के

उद्देश्य से सीमित का प्रयत्न करना चाहिए। इसके लिए सक्रिय उपायों को अपनाना चाहिये। और वे उपाय क्या हो सकते हैं? केवल वे ही जिनसे शुरू से ही अनन्त की विशेषतायें पैदा होती हों। मैं पाठको का बड़ा आभारी होऊँगा यदि वे इस वाक्य पर थोड़ा मनन करेंगे।

इसका सर्वोत्तम समावेश वे ही कर सकते हैं जिन्होंने अपने निज के चक्रों में वास्तविक विशिष्टता अर्जित कर ली है, जो जानते हैं कि ऊपर के चक्रों से नीचे के चक्रों में शक्ति और पवित्रता कैसे खींची जाय और जो अभ्यासी में इस प्रभाव को संप्रेषित कर सकते हैं जिससे वे उसी विशिष्टता को अपना लें। इसके लिए एक सबल सक्रिय हाथ सदा आवश्यक होता है। जब तक हम अपने चक्रों में जमी हुई जड़ता दूर नहीं करते तब तक अपने द्वारा उत्पन्न जड़ता और जटिलताओं के कारण ऊपर वाले चक्रों का अनुग्रह या प्रभाव दूर ही रह जाता है। हमारा सहज मार्ग चक्रों की सफाई के लिए विधि बताता है और प्राणाहुति की विधि से यह कार्य गुरुदेव स्वयं करते हैं। जब तक अभ्यासी को अनुग्रह की प्राप्ति सीधे नहीं होती, तब तक गुरु अपने को सीधे मिलने वाले अनुग्रह को अभ्यासी की ओर घुमा देते हैं।

मैं प्रकृति की शक्तियों और शक्ति-चापों की पहले ही चर्चा कर चुका हूं। उन सब का मनुष्य के रूपान्तरण के लिए जैसे आवश्यक हो वैसे प्रयोग होता है। हम हृदय के भीतर दिव्य

प्रकाश का चिन्तन करते हुए, ध्यान प्रारम्भ करते हैं और ऐसा करने से हम धीरे धीरे ऊपर उठने लगते हैं, या अधिक उपयुक्त शब्दों में, आन्तरिक चेतना में अधिक गहरे पैठते हैं। परिणाम यह होता है अभ्यासी फैलने का अनुभव करने लगता है। यह पहला चरण है। इसका अर्थ है कि हमने अनन्तता का बीज बो दिया या दूसरे शब्दों में उस वस्तु को, जो हमारी नजर से निकल गयी थी, पुनः प्राप्त कर लिया।

अब दूसरा चरण नजर में आता है। मनुष्य हर प्राणधारी वस्तु में ईश्वर की उपस्थिति का अनुभव करने लगता है। तीसरी चीज जिसका हम अनुभव करते है, इसी बात की बदलती हुई अवस्था है। वह चीज बदल जाती है और व्यक्ति अनुभव करता है कि हर चीज ईश्वर से आई है और उसी की अभिव्यक्ति है। चौथे चरण में नकारात्मकता की अवस्था आती है जो अन्ततः हमें प्राप्त करनी है। हम हर परमाणु और पदार्थ में एकरूपता पाते हैं। यदि रास्ता सही और मार्गदर्शक पूर्ण है तो हर कोई इन चरणों से गुजरता है। ज्यों ज्यों हम अगले क्षेत्र की ओर बढ़ते हैं, यह चीजें विरल होती जाती हैं यहाँ तक कि हम ब्रह्माण्ड-मंडल में पहुँच जाते हैं। वहाँ भी यह चीजें चालू रहती हैं पर वे अधिक हल्के रंगों में प्रतीत होती हैं। यदि गुरु पूर्णताप्राप्त नहीं है तो उन शक्तियों में, जिनका अध्यात्म से कोई लेना देना नही है, डूब जाने की जोखिम रहती है। अंतिम

सीमा तक गुरु का काम चलता जाता है। मैंने अभ्यासी और गुरु के काम का विवेचन किया है। पर इस मार्ग की प्रणाली की, जिसे गुरुदेव मानव जाति की उच्चतर पहुँच के लिए अपनाते हैं, हृदय के चक्रों की, जिनके माध्यम से मार्गदर्शक अपना काम करता है, और मन और इन्द्रियों को संयमित करने की विधि की, चर्चा नहीं की है। अभ्यासी का दायित्व गुरु के प्रति पूरी तरह आज्ञाकारी होना है। मेरा आशय है कि उसे गुरु पर विश्वास या कम से कम भरोसा रख कर, आत्मविश्वास के साथ उनके निर्देशों का पालन करना चाहिए। हमें ऐसे गुरु की खोज करनी है जिसकी पहुँच अंतिम सीमा तक है। गुरु का, और उपनिषदों के शब्दों में ऐसे शिष्य का, मिलना बहुत कठिन है। पर यदि आत्मानुभव के लिए दहकती हुई अभिलाषा हो तो गुरु शिष्य के द्वार तक पहुँच जाता है। विश्वास और सन्देह दो चीजें हैं और दोनों की आवश्यकता है। पर सामान्यतः हम करते यह हैं कि जहाँ शंकालु होना चाहिए वहाँ विश्वास कर बैठते हैं और जहाँ विश्वास अपेक्षित है वहाँ शंका करते हैं।

अंत में मैं इस बात पर बल देना चाहूँगा कि जिन्हे आत्म-साक्षात्कार की सच्ची अभिलाषा है उनके लिए उसे पाना बिलकुल कठिन नहीं है। यदि अभिलाषा है तो उसे वह सही रास्ता मिल जायेगा जिसके द्वारा थोड़े समय के अन्दर आत्म-साक्षात्कार मिल सकता है। आदमी की सच्ची अभिलाषा उसे

बेचैन किये रहती है और वह केवल अपने असली ध्येय तक पहुँचने के लिए काम करता है। हममें से न जाने कितने, नित्य क्रम में, ईश्वर की पूजा और प्रार्थना करते हैं। पर वैसा हम केवल अपनी इन्द्रियों की तुष्टि के लिए करते हैं। इस क्षेत्र में मानसिक सुख होता है, इन्द्रिय-सुख होते हैं, और वे लोग इतने सुखोपभोगों में फँस जाते हैं, जो उन्हें आत्म-साक्षात्कार के लिए निर्दिष्ट जीवन में झाँकने से रोक लेते हैं।

आदर्श और कमियाँ

चूँकि संसार क्षणभंगुर है, अतः हर एक को देर में या जल्दी विदा होना पड़ता है। पर कुछ बिना बोझ लिये जाते हैं, कुछ बोझ के साथ। अधिकांश लोग धन पीछे छोड़ कर विदा होते हैं और केवल इसी कारण उनके उत्तराधिकारियों के मन में उनकी स्मृति ताजी रहती है। पर आध्यात्मिक रूप से पूर्ण मनुष्य की कमाई कुछ और ही होती है। कुछ पास न होने पर भी वे मालदार विदा होते हैं। कुछ पास न होने से मेरा अर्थ है कि निर्विषयी होकर परिगृहीत की खोज में लगना, एकाकी होकर, 'एक' की खोज है। उसे संसार के आराम, भोगों, सफलताओं और सुखों से कोई सरोकार नहीं है। वह इनके बन्धनों से अपने जीवन-काल में ही छूट जाता है। और माल से मेरा मतलब है कि वह साथ में रास्ते का भोजन यानी अपनी आध्यात्मिक कमाई

का सार-तत्त्व ले लेता है। वह अपनी आध्यात्मिक कमाई अपने आध्यात्मिक उत्तराधिकारियों के पास ठीक एक गृहस्थ की तरह छोड़ जाता है। हर किसी को उसका भाग अपनी क्षमता के अनुसार मिलता है और शेष सारा उत्तराधिकारी आत्मसात् कर लेता है। और यह केवल दीक्षित सदस्यों को मिलता है क्योंकि कानूनन केवल आध्यात्मिक संतानों का उस पर अधिकार है। निःसन्देह कुछ अंश उनके पास भी पहुँचता है जो अपने गुरु को विशेषतः प्यार करते थे और जो लयावस्था में पहुँच गये हैं और यह सही भी है। अध्यात्म में हिस्सा उनको मिलता है जो सचमुच योग्य हैं और इसीलिए मैंने बार बार अभ्यासियों को उस चीज को पाने योग्य बनने के लिए प्रेरित करते हुए लिखा है। उसके लिए केवल दो बातों की दरकार है—प्यार और आज्ञा पालन। यह दोनों बातें परस्पर-निर्भर हैं।

निःसन्देह यह सच है कि दीक्षा नितान्त आवश्यक है और उसके बिना कोई चारा नहीं। यह सचमुच ऊँची पहुँच को प्राप्त करने में अनिवार्यतः सहायक होता है। यदि कोई अपने अन्दर ऊँची पहुँच की दशा उत्पन्न कर ले तो बात दूसरी है। तब भी वह 'महान् उपहारं' से वंचित रहता है। दीक्षा देने वाला दीक्षा देने के बाद उतना ही विवश हो जाता है जितना पिता पुत्र के प्रति। बेटा कितना ही नटखट हो, पिता उसे

अपना ही बेटा कबूल करता है और उसकी पैत्रिकता पूर्ववत् बनी रहती है। हाँ, अध्यात्म में कुछ खास मामलों में कुछ ऐसा भी घटित होता है जब गुरु अपने आध्यात्मिक उत्तराधिकारियों में से किसी को अधिकार-वंचित कर देता है। पर यह बहुत ही अपवाद रूप में होता है और केवल गुरु इसका निर्णय करते हैं। दीक्षा का सिद्धान्त यह है दीक्षा केवल तभी दी जा सकती है जब जिज्ञासु की श्रद्धा परिपक्व हो जाती है और वह प्रेम में बहुत गहरे जाने लगता है।

अब अपने सत्संगियों का हाल सुनिये। कोई सज्जन शिष्टता-वश पूजा करते हैं, कोई अन्य केवल औपचारिकता के लिए उसमें बैठते हैं। खैर, ईश्वर को धन्यवाद है कि कम से कम इतना तो है। किसी सज्जन की कभी ही कभी पूजा में बैठने की आदत है और वे चाहते हैं कि मैं उनको इसके लिए नियमित आदत डाल दूं। खैर, यह और भी अच्छा। सम्भवतः कोई सज्जन कठिनाइयों और दुःख में ईश्वर की जगह मुझे स्मरण करके ईश्वर-निंदा के दोष-भागी भी होते हों। किसी को सच्ची रुचि नहीं लगती। ऐसे लोग यदि हैं भी तो उँगलियों पर गिनने लायक; उनमें न लालसा है न उत्कण्ठा। एक बार मेरे गुरुदेव लालाजी ने किन्हीं सज्जन को लिखा था, "मुझे शेर चाहिए, भेड़ें नहीं।" और उन्होंने जबानी किन्हीं सज्जन से कहा था, "मैंने भद्रतावश अपने सत्संग में भेड़ों को भी

प्रविष्ट कर लिया है।" यह उनका अनुभव था। इसकी याद आते ही, किसी के खिलाफ़ कोई शिकायत नहीं रहती। लगता है कि दोष केवल मेरा है। पर तब हर किसी का सार सँभाल करना पड़ता है। मैंने उसके उपाय सोचे। मुझे कुछ प्रकाश मिला या भविष्य में मिलने की आशा बँधी—मेरे लिए यह सन्तोष की बात है। कम से कम कुछ नहीं से यह बेहतर है। कम से कम कुछ न कुछ काम हुआ रहेगा। कुछ भी हो, हमारी मंशा सही है। निम्नलिखित उदाहरण से आप मेरे दिल की हालत का अंदाजा लगा सकते हैं। कल जब मैं दफ्तर से लौट रहा था, मैंने देखा कि एक बन्दर सड़क के किनारे पड़ा, किसी चोट के कारण, अंतिम सांस ले रहा है। मैं बहुत द्रवित हो गया। मैं कुछ न कर सका। मैं वहाँ एक मिनट खड़ा रहा और प्राणाहुति देने लगा जिससे भविष्य में इसकी हालत बेहतर हो जाय। इससे अधिक करने की मेरी तबियत न हुई।

बार बार मेरे मन में विचार आता है कि मैंने पिछला पत्र बहुत कड़ा लिख दिया। पर ऐसा करने को मैं बाध्य था। मैंने सोचा कि यदि जबान में सख्ती नहीं है, तो कलम में तो सख्ती है ही क्योंकि उसमें लोहा रहता है और लकड़ी भी। और इस प्रकार इस सख्ती के कारण अपने ऊपर सख्ती करके आप सम्भवतः ईश्वरीय प्रेम का प्रवाह दिखा सकते हैं। कदाचित् यह सख्ती कुछ अच्छा परिणाम ला सके, यद्यपि यह एक

हकीकत है कि जब तक ईश्वर की मरजी नहीं होती तब तक सेवक उसकी ओर आकृष्ट नहीं होता और उसे उसका दर्शन नहीं मिलता। अब प्रश्न उठता है कि वह सेवक को अपनी ओर आकृष्ट करने की तकलीफ क्यों करे। क्योंकि यदि ईश्वर में कोई प्रेरणा है तो मैं समझता हूँ कि हमारी तरह वह भी एक गृहस्थ है। पर इसके साथ यह भी हकीकत है कि जब हमारा उद्देश्य उससे मिलना होता है तभी हम ऐसी विधियाँ अपनाते हैं और इसी को अभ्यास कहा जाता है। जब उससे मिलने की तीव्र इच्छा उपजती है तब एक प्रकार की प्रेरणा उसमें भी उत्पन्न होती है। पर भाई जान, कौन है वह जिसे यह चीज पैदा करनी रहती है। किसे इसके लिए फुरसत है? हम अपनी दल-दल में फँसे पड़े हैं और उसी में हम मजा ले रहे हैं। यहाँ की तकलीफ भी मजा है। इसका मतलब यह नहीं है कि हम संत हो गये हैं।

कहा जाय तो आमतौर पर, हर कोई अपने अपने विचार के पीछे पागल है। मैंने तकलीफ़ को मजा कहा है क्योंकि लोग किसी भी तरह की दुर्गति सहन कर लेते हैं पर हम अपनी दुर्गति से बाहर नहीं निकलना चाहते हैं। क्योंकि हम जैसे ही रसोई के बाहर निकलते हैं, रसोई दूषित हो जाती है। एक कदम रसोई में रहता है, दूसरा उसके बाहर। हम दोनों कदम

रसोई के बाहर ले जाने की सोचते तक नहीं जिससे हम बाहर बाहर कदम रख सकें और रसोई अप्रदूषित रह सके।

आध्यात्मिक प्रगति

माया के आवरण को विदीर्ण करने वाले कई विशिष्ट व्यक्ति आपको मिलेंगे पर अहं के आवरण को भेदने वाला एक व्यक्ति भी शायद ही मिलेगा। युगों युगों तक भी यह असंभव रहता है। मनुष्य और ईश्वर के बीच केवल यही परदा रहता है। इस परदे के नजदीक आने के पहले अभ्यासी अपने को पूर्ण कहते हैं और वे वास्तव में ऐसे होते भी हैं। पर ऐसा महान् विशिष्ट व्यक्ति जो इस परदे को फाड़ सके हजारों साल बाद आता है। उसी को पार कर लेने पर सर्वशक्तिमान की लहर, बिना अन्तराय के, प्रवाहित होने लगती है। ऐसे समर्थ व्यक्ति को पाना बहुत कठिन है। यदि इस प्रवचन के साथ मैं किसी के पास जाऊँ तो यह एक बेवकूफ की बात होगी, क्योंकि वह मुझमें यही कमियाँ पायेगा; पर मैं आपको उस स्थिति को प्राप्त करने के लिए मार्गदर्शन के रूप में लिख रहा हूँ। आप सबसे यही बात कहने के लिए मैं कर्तव्यबद्ध हूँ। मान लीजिए मुझमें उस सीमा तक की योग्यता नहीं है। फिर भी मेरे पास दिल है जो प्रार्थना करने को तैयार है कि आप सबको वह स्थिति प्राप्त हो सके। पर आपको या किसी को ऐसे चीज कैसे मिल सकती है जब आप अपनी सुस्ती और ढिलाई को

दूर नहीं करते ? जब कोई उच्चतर आदर्श तक पहुँचना चाहता हो तो उसके लिए रास्ते की बाधक चीजों का त्याग करना आवश्यक है। यदि कोई अनावश्यक चीजों को छोड़ नहीं पा रहा है तो इसका मतलब है उसने अभी तक अपना आदर्श नहीं निर्धारित किया है। दो चीजें एक स्थान में नहीं रह सकतीं। अब मैं आपकी बात पर आ रहा हूँ। मैं नहीं कह सकता कि मेरी उम्र लंबी होगी या छोटी। इस अवधि में यदि आप या दूसरे लोग कुछ प्रयत्न न करके समय बरबाद करते हैं तो यह भारी भूल होगी। यद्यपि मेरी ही तरह कोई न कोई आप सब को आध्यात्मिक स्थितियाँ प्रदान करने के लिए रहेगा ही, पर मैं अपनी आँखों से आप सबकी प्रगति देखना चाहता हूँ।

यदि आदमी अपना आदर्श (मेरा आशय ईश्वरीय आदर्श से है) सच्चे अर्थ में अपने सामने रखे, तो यह हो नहीं सकता कि वह अपने सर्वप्रथम कर्तव्य की अवहेलना कर पायेगा। आपके द्वारा निर्मित बाधायें भी जीती जा सकती हैं यदि आप अपनी संकल्प-शक्ति पर थोड़ा जोर डालें। कभी कभी मुझे आपको आपकी दुर्बलता बताते डर लगता है। साथ ही मुझे पता है कि आपको अपनी दुर्बलता की जानकारी है। यदि आप ईश्वर प्राप्ति के पवित्र विचार को ध्यान में रखें तो ये चीजें आपसे शीघ्र ही विदा हो जायेंगी। इस मामले में मैं भी आपका

सहायक हो सकता हूँ बशर्ते कि मुक्ति की यात्रा की ओर आप भी अपने को थोड़ा आगे ले चलें। लोग जिस आदत के अभ्यस्त होते हैं उसे छोड़ना नहीं चाहते क्योंकि उसके लिए उन्हें अपने ऊपर बल लगाना पड़ता है और इसमें उन्हें कष्ट लगता है। ठीक, मैं मान लेता हूँ। उनको दूर करने की कोशिश न कीजिए पर साथ ही साथ अपने भरसक जोर लगाइये और जीवन के सच्चे उद्देश्य को पाने के साधन अपनाइये। यदि आप सचमुच यह शुरू कर देते हैं तो मुझे सूचित कर दीजिये जिससे हर कदम पर मैं आपका हित-साधन कर सकूं। आप स्वयं जानते हैं कि मैं आप पर भी अपनी आशायें बाँध रहा हूँ। तब यदि आप उन्नति नहीं करते तो क्या मुझे अफसोस नहीं होता ?

आपने मुझे लिखा है कि आपमें आध्यात्मिक प्रगति के लिए तीव्र लालसा है और मैं इस पर विश्वास करता हूँ। लकड़ी के जलने में तीन स्थितियाँ होती हैं। एक स्थिति में धुँआ होता है, दूसरी में चिनगारी और तीसरी जलने का सार होती है जो तभी दिखलाई पड़ता है जब ध्यान से देखा जाय। इसका रंग बिजली जैसा होता है और इस पर भोजन बहुत शीघ्र पक जाता है। यह बात इसमें मौजूद तैलीय पदार्थ के कारण है। दूसरी चीजें यानी धुँआ और चिनगारी क्रमशः गीलेपन और ठोसपन के कारण होती हैं। यदि आपमें जलाऊ लकड़ी से निकली बिजली की चिनगारी जैसी दहकती हुई

लालसा होती तो आध्यात्मिक क्षेत्र में आप बहुत तेजी से आगे बढ़े होते। बिजली धुँये और ठोसपन से रहित होती है। तब यह कैसे काम करती है ? बिजली जैसे बनिये और तब जलिये। तब आपको अभीष्ट परिणाम मिलेंगे । यदि आप अपने को गीलेपन और ठोसपन से मुक्तकर लेते हैं तब निःसंदेह आप बिजली की चिनगारी बन जाते हैं। गीलापन क्या है और ठोसपन क्या है ? इस विषय में जीवन का अपना अनुभव आपका समाधान करेगा । यदि आप यह प्रश्न पूछते हैं तो मैं उत्तर दूंगा कि गीलापन मिला ठोसपन आपको अधिकतम कलुषित करता है । सूक्ष्मता के विरुद्ध गतिमान प्रकृति की क्रियाय इच्छाओं के रूप में प्रकाशित होती हैं। जीवन का ध्येय प्राप्त करने की इच्छा मनुष्य के मन में होनी चाहिये। मैं आपको ये बातें लिख रहा हूँ जिससे लोग मेरी आलोचना न करें। यह इच्छा स्वभावतः लुप्त हो जायेगी जब आप जीवन के ध्येय को पाने में लगते हैं। पर यह दूर की बात है। वर्तमान स्थिति में आपको उसके बारे में नहीं सोचना चाहिए। पुरस्कार में ईश्वर के आशीर्वाद मिलते हैं। अभ्यासी के लिए तेल क्या है ? भक्ति ! सतत स्मरण भक्ति को निकट लाता है और वही बीज है जिससे तेल निकलता है। जहाँ तक अन्य अभ्यासियों की बात है, मैं कहूंगा कि उनमें अधिकांश आलसी हैं और वे इस दोष के इतने अभ्यस्त हो गये हैं कि उन्हें अपने सर्वाधिक हित पर ध्यान देने का समय ही नहीं मिलता। पर

इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। बन्धु के नाते हमारा क्या धर्म है? हमें उनकी ओर सदा एक ही बाप के बेटों की दृष्टि से देखना चाहिए। मान लीजिये हममें से कोई अपने कर्तव्य से विमुख है। पर उसके प्रति मेरे कर्तव्य-विमुख होने का यह कोई कारण नहीं। आध्यात्मिक बन्धुओं द्वारा पालनीय बातें मैं सदा घुमाकर कहता हूँ। अपने गुरुदेव के समान, ध्यान को छोड़कर और किसी बात को मैं अनिवार्य नहीं बताता। पर मैं यह कहने के लिए बाध्य हो रहा हूँ कि वे इसका भी पालन करना लाजिम नहीं मानते। मैं यह क्यों करता हूं? ऐसा इसलिए हो सकता है कि यदि मैं किसी चीज को मना कर दूं और लोग, उसे करें तो वे कर्तव्य विमुख सिद्ध होंगे जो एक पाप है—यदि आप शिक्षण के सच्चे अर्थ को बारीकी से सोचें। मैं नहीं चाहता कि वे किसी भी तरह किसी प्रकार के पाप के भागी हों। अभ्यासी जानते हैं कि मेरा क्या आशय है पर वे उसका पालन नहीं करते। उदाहरण के लिए हमारी संस्था में मांस खाना सर्वथा निषिद्ध है और मैंने नीति और गुरुदेव के आदेश के रूप में इसकी घोषणा भी कर दी है। फिर भी उनमें से कोई भी इसे छोड़ न सका। आध्यात्मिक आशय के लिए यह बिलकुल लाभकर नहीं है। दुर्बल लोगों के लिए (डाक्टरों द्वारा) इसका उपयोग बताया जा सकता है और बहुत थोड़े मामलों में उनके लिए इसकी अनुमति दी जा सकती है पर स्वस्थ शरीर वालों के लिए नहीं। लोग सामान्यतः इसे स्वाद

के लिए खाते हैं जो आध्यात्मिक प्रगति के लिए हानिकर है। सच कहें तो किसी प्रकार का अत्याधिक लगाव-विधेयात्मक या निषेधात्मक-आध्यात्मिकता के लिए विष है।

अध्यात्म-मार्ग में प्रगति

I

एक आदमी आध्यात्मिक जीवन में अभी-अभी प्रवेश करता है। उसे 'अ' कह कर पुकारिए। वह कैसे प्रविष्ट होता है? वह किसी विशिष्ट व्यक्ति की श्रेष्ठता के बारे में सुन कर प्रवेश करता है। अ ब को अपने से बड़ा विशिष्ट व्यक्ति पाता है जो उसके भाग्य का निर्माण कर सकता है। अब वह ब से प्रेम करने लगता है। कुछ समय बाद उसका प्रेम अधिकाधिक होने लगता है। इसका मतलब है कि उसने ब को अलौकिक प्राणी माना है। जब उसका प्रेम बढ़ता है तब उसके दिमाग में उस विशिष्ट व्यक्ति के प्रति गहरी श्रद्धा का भाव पनपने लगता है। जब ऐसा हो जाता है तब अ ब को ईश्वर मानने लगता है और तीव्र प्रेम के कारण अपने हृदय में उसकी एक मूर्ति बना लेता है। एक क्षण के लिए भी वह इस धारणा से अलग नहीं होना चाहता है। अपने हृदय में उस महान् विशिष्ट व्यक्ति के लिए वह कामना करता है। दूसरे शब्दों में वह अपने आदर्श को अपने सीने में सुरक्षित रखता है। जो

चीज उसे सताती है वह है ब का खिलवाड़, वैसे ही जैसे बच्चा बड़ा होकर माँ के कपड़ों में छिप जाता है और उसे अपने को खोज निकालने के लिए कहता है। अ ब का ध्यान कर रहा है, परदा अपने आप बीच में आ जाता है और मूर्ति ढकी लगने लगती है। यह परदा कहाँ से आता है? यह परदा उसके विचार का ही है जिसने उसे उसके महान् गुरु—सर्वशक्तिमान ईश्वर—से दूर कर रखा है।

मान लीजिए परदे के कारण वह अपने गुरु को नहीं देख पा रहा है। इसे लेकर उसे परेशान नहीं होना चाहिए। ऐसा क्यों? क्योंकि उसके गुरु ब इस परदे के भीतर हैं और स्वयं उसमें भी किसी न किसी शक्ल में हैं। मान लीजिए कि वह अपने गुरु को अपने शक्ल में नहीं देख पाता। इस पर भी उसे परेशान नहीं होना चाहिए। मोटे तौर पर कहें तो वह (गुरु) हर कहीं है। पर चूँकि शिष्य उसकी मौजूदगी हर जगह नहीं देख सकता, धारणा के लिए उसने अपने शरीर के अन्दर गुरु को सीमित कर लिया। यदि वह समझता है कि उसके गुरु उसके अन्दर विराजमान हैं तो उनकी उपस्थिति की धारणा की पूर्ति हो जाती है। इसका मतलब है कि गुरुदेव की धारणा उसके हृदय में गहरी बैठी हुई है। कितनी हास्यास्पद वह बात है—वह अपने गुरु को वहीं खोजता है जहाँ उसने उन्हें स्थापित किया है। मान लीजिए वह अपने गुरु से प्रार्थना करता है कि

मेरे हृदय-पट पर विराजिए और उसकी प्रार्थना सुनी जाती है और उसकी बुलाहट पर उसके गुरु उत्तर देते हैं, "मैं बदलता हूँ, मरता नहीं" तो यों कहें कि यह विचार सर्वथा सही होगा। यह विचार ऐसे ही बना रहना चाहिए। रूप बदलता रहे, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता।

अब शिष्य सन्तुष्ट हो जाता है। वह अपने गुरु का ध्यान करता है और उनकी उपस्थिति का भाव उसके हृदय में रहता है। मैं समझता हूँ कि यह काफी है। इसके पीछे एक दार्शनिक विचार निहित है। जब हम किसी पक्षी को पहले पहल पिंजरे में रखते हैं तो वह अपने पंख फड़फड़ाता है क्योंकि वह उसका अभ्यस्त नहीं है। आप असीम को अपने हृदय के पिंजरे में रखते हैं। आपको समझ में लाने के लिए असीम की उपमा पक्षी से दी जाती है; जब वह आपके साथ उड़ने लगता है और तब आप उसकी छवि की झलक पाने की चाह करने लगते हैं, जो केवल तभी तक दिखलाई पड़ती है जब तक उड़ान नहीं आरम्भ होती। आप दोनों साथ साथ उड़ते हैं और पिंजरा समेत आप उससे एकाकार हो जाते हैं। जब ऐसा होता है—मेरा मतलब है कि जब आपकी उड़ान शुरू हो जाती है—तब, आप के पास जो कुछ है वह सब साथ लेकर उड़िये।

II

यदि 'अ' सब कुछ अपने गुरु को अर्पित करके अपना काम शुरू करता है, तो कल्पना कीजिए कि दीर्घ काल में यह कितना अच्छा होगा। वह सब कुछ अपने गुरु के लिए करता है। नहीं, वह सब कुछ यह सोचते हुए करता है कि उसके गुरु स्वयं यह सब कर रहे हैं और वह ऐसा इसलिए सोचने को बाध्य है कि दोनों (गुरु-शिष्य) साथ साथ उड़ रहे हैं। सच कहें तो 'अ' ने अपनी कल्पना में प्राण डाले और वस्तु सजीव हो उठी। अब दोनों सजीव हैं। सुबह से ही वह अपना काम प्रारम्भ करता है। वह यह सोचते हुए अपनी नित्य की पूजा करता है कि मेरे गुरु यह सब कर रहे हैं। वह जलपान करता है, यह सोचते हुए कि मेरे गुरुदेव यह कर रहे हैं। वह दफ्तर जाता है और वहाँ दफ्तर का काम करता है, यह सोचते हुये कि यह सब गुरुदेव स्वयं कर रहे हैं। अब वह दफ्तर से लौटता है। रास्ते में उसे एक आकर्षक नाच मिलता है और उसमें नाचती हुई आकृति पर उसकी नजर पड़ती है। यदि तब आप अपने को रोक नहीं पाते तो क्या सोचते हैं? यह सोचिए कि आप नहीं, गुरुदेव की आँखें—जो उन्होंने आपको दी हैं—उस दृश्य को देख रही हैं। इससे क्या भला होगा? आपका नाच देखने का कुतूहल तुरन्त शान्त हो जायेगा क्योंकि आपके गुरु की शक्ति तुरन्त प्रवाहित होने लगेगी और तत्काल उठे कुतूहल से आप

मुक्त हो जायेंगे। अब दफ्तर का काम खत्म करके आप घर आते हैं। आप देखते हैं कि बच्चे आपको देखकर बहुत खुश हैं क्योंकि दफ्तर से आप कई घण्टों के बाद घर आये हैं। आप उनकी हँसी खुशी में आनन्द लेते हैं और निस्सन्देह यह स्वाभाविक ही है। तब आप क्या करेंगे ? आपका ध्यान उनकी ओर बँट गया है और कुछ समय के लिए आप अपने पवित्र विचार से दूर हो जाते हैं। यह विधि पूरी हो जायेगी यदि तब आप यह सोचें कि आपके अन्दर स्थित गुरुदेव इन सबका आनन्द ले रहे हैं। आप देखेंगे कि उसका प्रभाव आप पर नहीं रहता और आप अपने विचारों से मुक्त हो जाते हैं। अब दूसरा काम सामने आता है। मित्र मिलने आते हैं। वे गपशप करते हैं। आप भी उनसे बातचीत करने लगते हैं और यह नित्य का क्रम है। सोचिए कि आप नहीं, गुरुदेव उनसे बातचीत कर रहे हैं। मैं कहता हूँ यही सर्वश्रेष्ठ अभ्यास है। इसी प्रकार आप अपने नित्य के और अपने जिम्मे के सारे कामों में व्यवहार कर सकते हैं। यदि आप घूमने निकले हैं तो उस समय आप अपने गुरु का चिन्तन कर सकते हैं पर कितना अच्छा होगा यदि आप दोनों बातें साथ ही कीजिए। आप अपने गुरु का चिन्तन भी कर रहे हैं और आपके मन में यह भी भाव है कि आपके गुरु स्वयं घूम रहे हैं। यदि आप ऐसा करते हैं तो इसका अर्थ है कि आप दूने बल से चल रहे हैं। इसी प्रकार जब आप ध्यान करते हैं तो

यह विचार लाइये कि आपके गुरुदेव स्वयं अपने स्वरूप का ध्यान कर रहे हैं।

यदि आप यह आदत डाल लेते हैं तो दीर्घकाल में आप पर क्या प्रभाव पड़ेगा ? आप आगे संस्कारों का निर्माण नहीं करेंगे। उसका अर्थ है कि भविष्य में भोगने के लिए चीजों के निर्माण करने की वर्धमान प्रवृत्ति अब रुक गई है। यही मुक्ति का मार्ग है। पर हमारा आदर्श उससे भी ऊँचा है। हम बार बार जन्म लेने के अनन्त चक्र से, जो उसके बाद आता है, अपने को छुड़ाना चाहते हैं। यह विधि आपको अन्ततः अनस्तित्व अवस्था तक पहुँचा देगी। इसका अभ्यास कीजिये और इसका प्रभाव देखिए। बहुत शीघ्र यह दिखाई पड़ेगा।

प्राणाहुति के माध्यम से आध्यात्मिक प्रशिक्षण

अपने गुरुदेव के अनुग्रह से मैं आज एक रहस्य उद्घाटित करूँगा जिसे लोग सामान्यतः नहीं जानते। जब भगवान् कृष्ण, स्वामी विवेकानन्द या मेरे गुरुदेव जैसे महान् व्यक्ति एक मनुष्य की सारी जीवन-धारा बदल देते हैं तो बड़ा अद्भुत लगता है। ऐसा कैसे किया जाता है ?

कुछ संशयालु लोग कह सकते हैं कि ऐसा केवल उस व्यक्ति के कारण हुआ जो अपने को बदलना चाहता था और गुरु तो

नाम भर के लिए कारण था। यदि भगवान कृष्ण में इतनी सामर्थ्य थी तो कुरुक्षेत्र का युद्ध कराने के बदले उन्होंने दुर्योधन का हृदय क्यों नहीं बदल दिया? वह बहुत सी कहानियाँ सुना सकते हैं जिनमें कोई आदमी निकम्मे व्यक्ति या निर्जीव पदार्थ को ही अपना पथप्रदर्शक मान कर महान् सन्त हो गया हो। पर इसके कारण वास्तविकता को खोज निकालने का हमारा प्रयत्न रुकना नहीं चाहिए क्योंकि ईश्वर के ढंग रहस्यमय होते हैं। कुछ लोग अपने ही विचारों से भ्रान्त हो जाते हैं और कुछ लोग ईश्वरीय अनुग्रह से प्रकाशित हो जाते हैं।

यदि मुझसे प्रश्न पूछा जाय कि भगवान कृष्ण को किनसे प्रकाश मिला तो मेरा उत्तर होगा कि वे स्वतः प्रकाशमान हैं। पर फिर इसके कारण जिज्ञासु को यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि वह भी एवं अन्य सब लोग स्वतः प्रकाशमान हैं और सारी जिज्ञासा का अन्त हो जाय। हृदय की अभिलाषा के पर्याय तर्क पर आधारित्त अटकलें नहीं हो सकतीं। चाहे तर्क किसी अंधी गली में पहुँच कर भले ही एकदम रुक जाय, पर हृदय को सन्तोष नहीं होता।

प्राणाहुति संकल्प शक्ति द्वारा दी जाती है जो सदा कारगर होती है। यदि एक अध्यात्म-प्रशिक्षक किसी अभ्यासी का मन ढालने के लिए अपना संकल्प काम में लाता है तो वह प्रभावी और अच्छे परिणाम लायेगा। बहुत से स्वामीजी, जो गेरुआ

चोला धारण करते ही गुरुपने का व्यवसाय आरम्भ कर देते हैं, उलहना देते हैं कि यद्यपि उनके शिष्य उनकी बात रुचिपूर्वक सुनते हैं फिर भी वे कुत्ते की दुम की तरह टेढ़े ही बने रहते हैं। कारण स्पष्ट है। या तो स्वामीजी संकल्प से काम नहीं लेते या उनमें संकल्प-शक्ति ही नहीं है। गुरु लोग बहुत सी श्रम-साध्य और दिमाग को थकाने वाली अभ्यास-विधियाँ बताते हैं और शिष्यों को उनके भाग्य के भरोसे छोड़ देते हैं। न तो गुरु इन विधियों का परिणाम जानता है न शिष्य को अपना विवेक काम में लेने की फिक्र है। परिणाम स्वरूप शिष्य में आन्तरिक जड़ता और बुद्धि की शिथिलता आती है और स्वतन्त्रता का नाश होता है, एवं गुरुओं में—जो प्रवचन देने के अपने अधिकार के प्रति तो बहुत सजग हैं पर जिन्हें अपने शिष्यों के प्रति अपने कर्तव्यों और दायित्व का तनिक भी ध्यान नहीं है—भ्रष्टाचार, अधःपतन और नैतिक भ्रष्टता आते हैं।

यौगिक प्राणाहुति-शक्ति से सम्पन्न योग्य प्रशिक्षक अभ्यासी की निम्न प्रवृत्तियों को क्षीण करता है और उसके हृदय के अंत-र्तम स्थल में ईश्वरीय प्रकाश का बीज बोता है। इस प्रक्रिया में प्रशिक्षक अपनी खुद की संकल्प-शक्ति से काम लेता है जिसकी सहायता के लिए ईश्वरीय अनन्त शक्ति रहती है। एक तरह से उसे "उसका" ज्ञान रहता है और वह अभ्यासी के हृदय पर अपनी संकल्प-शक्ति रूपी लेंस से "उसे" संकेन्द्रित करता है।

सम्भव है कि अभ्यासी को शुरू में कुछ भी अनुभव न हो। इसका कारण यह है कि वह केवल इन्द्रियों से अनुभव करने का अभ्यस्त है और ईश्वरीय शक्ति इन्द्रियों से परे है। पर कुछ समय बाद वह ऐसी प्राणाहुति के प्रभाव का अनुभव कर सकता है, जो उसके मर्म-स्थलों की क्रियाशीलता में और मन की वृत्तियों में सूक्ष्म परिवर्तन के रूप में घटित होते हैं।

इस प्रक्रिया की अनुरूपता मोटे तौर से सम्मोहन-विद्या में देखी जा सकती है, जिसके परिणाम प्राणाहुति से विपरीत हैं। इस हीन कला में सम्मोहन-कर्ता भौतिक शक्ति की सहायता के साथ अपनी संकल्प शक्ति काम में लाता है। सम्मोहित व्यक्ति की इच्छा-शक्ति निर्बल हो जाती है और सम्मोहन की मूर्छा से जगने के बाद वह अपने को बहुत उत्साह-हीन और भारी मन का पाता है। सम्मोहक की शक्ति और सम्मोहित के समर्पण के अनुपात में इस विधि से कुछ हद तक रोग ठीक किया जा सकता है या मन की कोई वृत्ति दबाई जा सकती है। पर यह प्रभाव अधिक समय तक नहीं टिकता। भौतिक वस्तुओं या मानसिक चित्रों को एकाग्रता के विषय बना कर किन्हीं कठोर मानसिक या शारीरिक अभ्यासों द्वारा सम्मोहन-शक्ति विकसित की जाती है। ये अभ्यास अक्सर मानसिक विकृतियाँ या पागलपन पैदा करते हैं और कभी कभी तो परिणाम स्वरूप शारीरिक विकृतियाँ भी होती हैं। हाँ, दीर्घकाल के सफल

अभ्यास का परिणाम कुछ सीमित भौतिक शक्तियों की प्राप्ति हो सकती है, और वे जब तक रहती हैं केवल कुछ इच्छाओं की पूर्ति में उपयोगी होती हैं।

अब तक पाठक इस साफ नतीजे पर पहुँच गये होंगे कि प्राणाहुति की शक्ति विशुद्ध मन के माध्यम से काम करने वाली ईश्वरीय शक्ति है। मन कैसे विशुद्ध होता है? वह ईश्वरीय शक्ति से कैसे संबद्ध होता है? सीधा उत्तर है कि यह तब होता है जब विचार स्थायी रूप से ईश्वर से जुड़ जाता है। अब, कोई अपने विचारों को ईश्वर से स्थायी रूप से कैसे जोड़े? इसके कई उत्तर दिये गये हैं। लेकिन मेरे अंतस्तल से जो मर्म फूट निकलता है वह यह है कि ऐसा मेरे गुरुदेव के द्वारा सम्पन्न किया जाता, किया गया है और किया जा रहा है। जब मुझे गुरुदेव का दर्शन मिला तब उनके आलोक से मेरा हृदय परिपूर्ण हो गया। और मैंने उन्हें अपने स्वामी, गुरु और आत्मा के रूप में सतत स्मरण करना शुरू किया। ईश्वर करे सभी जिज्ञासुओं को उनकी प्राप्ति हो।

अमोघ पथ

शंकर ने अपने वेदान्त दर्शन में मीमांसा में निर्दिष्ट कर्मकाण्ड का विरोध किया है पर मुझे इन मतों में से किसी से सरोकार नहीं है। निःसन्देह, कर्मकाण्ड कुछ हद तक सहायक होता है, पर

वह भी केवल सात्त्विक वृत्तियों को बढ़ाने में। अध्यात्म के लिये वह जमीन तैयार करने का भी काम दे सकता है। अत: यदि उसे लगे हाथ और सब चीजों के साथ, ईश्वरानुभूति से सहयोग के लिए अपनाया जाता है, तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

हिंदुओं में देवताओं के पूजन का बहुत चलन है। यह सांसारिक लाभ या बच्चों की सुरक्षा के उद्देश्य से किया जाता है। अधिकतर, महिलायें इसमें लगी रहती हैं क्योंकि वे ही बच्चों को जन्म देती है और पालती पोसती हैं और इसलिए उनके स्नेह-बंधन अधिक सबल होते हैं। वे अपना काम करें, हमें अपना काम करना चाहिए।

मैं सर्वथा बाहरी ढंग के जप के पक्ष में नहीं हूँ, यद्यपि मैं स्वयं कुछ मामलों में जप की सलाह देता हूँ; पर वे दूसरी तरह के होते हैं। यह वह साधन है, जिसके द्वारा अभ्यासी स्वयं अपने विकास के लिए प्रयत्न करता है। पर हमारी संस्था में यह भार गुरुदेव स्वयं अपने ऊपर ले लेते हैं और वे अभ्यासी को प्राणाहुति द्वारा आध्यात्मिक शक्ति से संपन्न करते हैं। अब यह अभ्यासी पर निर्भर करता है कि वह प्रेम और भक्ति द्वारा गुरु से अधिकाधिक प्राप्त कर ले। भक्ति और समर्पण जितने अधिक होंगे, उतनी ही अधिक शक्ति अभ्यासी में प्रवाहित होगी।

अब कुछ भक्तों द्वारा कलियुग में मुक्ति के लिए ईश्वर के नाम को बार-बार लेने की विधि के उपयोगी होने की बात पर आयें। मेरी मान्यता है कि ईश्वर के नाम लेने से उत्पन्न कम्पनों में जब तक हम लीन नहीं हो जाते, हम अभीष्ट परिणाम पाने का पक्का भरोसा नहीं कर सकते। कुछ शास्त्रों में लिखा है कि यदि हम लगातार चौबीस घंटों तक ईश्वर का नाम लेते रहें तो हमें ईश्वर का दर्शन मिल जायेगा। बहुत पहिले, मेरी माँ ने पूरी निष्ठा से एक बार यह किया था पर उसका कोई फल नहीं निकला। मेरे अपने अनुभव एवं आत्म-साक्षात्कार के अनुभव के आधार पर, सामान्यतः विश्वास किया जाने वाला दर्शन का सिद्धान्त मुझे बिल्कुल नहीं जँचता। मैं भी कभी-कभी, राम की सर्वव्यापकता पर अपना ध्यान जमाते हुये उनके नाम के मानसिक जप की सलाह देता हूँ। यह प्रक्रिया सतत स्मरण की स्थिति लाने में भी सहायक होती है। सच कहें तो हम कोई नाम नहीं लेते; केवल उनके गुण पर, बिना उनकी छवि को अपने मनःपटल पर लाने की कोशिश किये हुये, अपना ध्यान स्थिर करते हैं। हमें अमूर्त परब्रह्म के पास पहुँचना है। उसके लिए हमें अपने गुरु का स्वरूप अपने सामने रखना होता है। पर यह तभी करना चाहिए जब मेरे परमश्रद्धेय आध्यात्मिक पिता के समान वह गुरु असन्दिग्ध रूप से उच्चतम योग्यता वाला हो और उसकी दशा पूर्णतः ईश्वर में निमज्जित हो। पतंजलि ने भी इस बात की अपने सेंतीसवें सूत्र में सिफारिश

की है। इस प्रक्रिया के माध्यम से आने वाली चार स्थितियों की व्याख्या "राजयोग का दिव्य-दर्शन" में की गयी है। अंतिम स्थिति अहँभाव को प्रायः समाप्त कर देती है। यह अचूक साधन है। मैंने अपने सारे आध्यात्मिक जीवन में इसका अनुसरण किया। यदि ऐसे गुरू उपलब्ध हों तो उनके स्वरूप का ध्यान किया जा सकता है। अन्यथा सीधी विधि सर्वश्रेष्ठ है।

अन्त में, मैं बता दूं कि यदि आपको आत्म-साक्षात्कार की प्यास है तो प्रकृति जितने सरल बन जाइये और वैसे ही साधन अपनाइये, जिस प्रकार आप लाडले बच्चे को रिझाने के लिए बालसुलभ ढंग अपनाते हैं।

हमें अपने पारिवारिक जीवन को, आसक्ति से रहित होकर हर काम कर्तव्य भाव से करते हुये, निरासक्त भाव से बिताना चाहिए। यदि पारिवारिक जीवन ठीक ढंग से ढाला जाय तो यह कोसने लायक चीज नहीं है। मान लीजिए कुछ करने को आप बाध्य हैं और आप उसे उसी के लिये, बिना अपने मतलब के करते हैं, तो मैं इसे निरासक्त कर्म कहूँगा जिसकी आपके मन पर कोई छाप नहीं पड़ेगी। हमें सोचना चाहिए कि हम अपनी पत्नी और बच्चों के लिए जो सारे काम करते हैं वे सब ईश्वरादेश के पालन में करते हैं। इस प्रकार हमारे सारे काम अन्ततः पूजा में परिणत हो जायेंगे। अपने विचारों को 'सर्व-शक्तिमान' से जोड़ने को यह बड़ी सरल विधि है।

जिज्ञासु के लिए संकेत

मैं मानता हूँ कि केवल प्रश्न और उत्तर आदमी के रहस्य-मय अन्तस् को उजागर नहीं करते। यह केवल सत्संग और अभ्यास द्वारा जाना जा सकता है। मैं आप से साफ़ साफ़ कबूल करता हूँ कि मैंने किताबें नहीं पढ़ी हैं क्योंकि मैंने उन्हे कभी काम का नहीं समझा। मेरा लक्ष्य तो सत्य था, मैं केवल उसे ही पाने योग्य मानता था और किताबों का अध्ययन मैंने विद्वानों और पंडितों के लिए छोड़ दिया। मैं जो कुछ भी कहता या लिखता हूँ वह सब आत्मानुभूति के मार्ग में मेरे अनुभवों के आधार पर है, शंकर या रामानुज या औरों ने अपने अनुभवों के बारे में जो कुछ कहा हो उससे मुझे कोई मतलब नहीं। अब अवश्य मैं कभी कभी कुछ पढ़ लेता हूँ, पर वह केवल मन-बहलाव के लिए होता है और उसमें से मैं सरल अभिव्यक्ति के लिए अधिक से अधिक याद रखने की कोशिश करता हूँ। शंकराचार्य के "विवेक-चूड़ामणि" में पढ़ी हुई एक ऐसी बात मुझे याद है, जिसका अर्थ है:

> "मोक्ष प्राप्ति में शास्त्र सहायक नहीं होते और जब मोक्ष मिल गया तो शास्त्र बेकार हैं।"

जब हम अभ्यास आरंभ कर देते हैं और अन्तिम ध्येय की खोज में लग जाते हैं, तो हम अपना ध्यान उन बातों पर केंद्रित

करते हैं जो हमें अपनी साधना में सहायक लगती हैं। तब हम सोचने लगते हैं कि हर चीज ईश्वर की मरजी पर निर्भर करती है, जिससे हम उससे जुड़े रह सकें। धीरे धीरे यह नज़दीकी और अधिक लगाव में बदलती है जो सही अर्थ में लयावस्था का आरंभ है। उसके लिए हम प्रेम, भक्ति और अन्य उपयोगी साधनों का सहारा लेते हैं। हम साथ ही यह कह सकते हैं कि हमारी अपनी संकल्प-शक्ति हमारे सीमित दायरे में चलती है और ईश्वर की संकल्प-शक्ति उसके सारे असीम प्रदेश में। जब तक हम अपनी सीमाओं और बंधनों को छिन्न-भिन्न न कर दें तब तक हम यह दावा नहीं कर सकते कि हमारी इच्छा-शक्ति ईश्वरेच्छा से अभिन्न है। यही हमारी असली साधना है और हम इसे असलियत में विलीन होने के लिए करते हैं। एक और पुस्तक "अनन्त की ओर" में इस प्रसंग की व्याख्या की गयी है। उसमें मैंने समझाया है कि कैसे अपनी विशिष्टता से मुक्त होने के बाद मनुष्य ब्रह्म से अभिन्न हो सकता है। ईश्वर के और मनुष्य के संकल्पों के बीच का संबंध इस प्रकार समझाया जा सकता है कि जब हम प्रथम की ओर (यानी ईश्वर के संकल्प पर) नज़र करते हैं तो बड़ी चीज़ छोटी को अपनी ओर खींचने लगती है। अपने सारे प्रतिबंधों को छिन्न-भिन्न करके हम जब 'उससे' (परात्पर से) एक हो जाते हैं तो अद्वैत भाव में रहने लगते हैं। पर हम शुरू द्वैत अवस्था से

करते हैं और कदम बढ़ाते हुये अन्त में स्वतः अद्वैतावस्था में पहुँच जाते हैं।

जहाँ तक आपके सवाल : क्या सभी ईश्वर की ओर स्वतः या उसकी मरजी से बढ़ते हैं, की बात है, यह कहना काफी होगा कि सभी नदियाँ अपनी अलग पहचान एक दम मिटा कर समुद्र में मिल जाती हैं। समुद्र नदी से मिलने नहीं आता। ठीक उसी तरह हम उद्‌गम की ओर बढ़ते हैं। एक समय आयेगा जब सब "उसमें" लीन हो जायेंगे और वह महाप्रलय की बेला होगी। हम केवल अपना रास्ता छोटा करने के लिए और इस प्रकार तब तक के अनगिनत जन्मों की दुर्गतियों से बचने के लिए, अभ्यास करते हैं।

सृष्टि निर्माण के समय केन्द्र के चारों ओर घूमने वाली गति के प्रभाव द्वारा प्रकृति अस्तित्व में आई। गति से शक्ति उत्पन्न हुई जिसके कारण सृष्टि बनी। मुझे लगता है कि महाप्रलय के समय प्रकृति का अस्तित्व समाप्त हो जाता है, क्योंकि यदि कोई संरचित चीज बच जाती है तो महाप्रलय सच्चे अर्थ में घटित नहीं हुआ। उसके बाद जो बच रहता है वह केवल वही "एक" है। हम समझने के लिए उसे 'शून्य' या 'आधार' कह सकते हैं। बिना आधार के कोई प्रकृति और कोई विश्व कायम नहीं रह सकते। अस्तित्व के पीछे कोई सहारा चाहिए और वह सहारा ईश्वर या ब्रह्म है। अस्तित्व निरर्थक है यदि उसके

लिए कोई आधार न हो। जहाँ तक प्रारब्ध कर्म की बात है, मैं समझता हूँ और अपनी सूक्ष्म दृष्टि से देखता हूँ कि वे भोग के लिए संचित हैं क्योंकि शरीर और मन का हर काम कुछ प्रभाव पैदा करता है। जब हम अतीत के सारे संस्कारों से अपने को मुक्त कर लेते हैं, हमें मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। निःसन्देह यह उबाऊ काम है। राजयोग में अभ्यास और अच्छे मार्गनिर्देशन के कारण वे (संस्कार) भोग के लिए प्रायः भूनी हुई अवस्था में प्रकट होते हैं। भोग की प्रक्रिया नींद में भी चलती है बशर्ते कि अध्यात्म की लाजिमी चीज यानी गुरु इस काम की योग्यता रखता है और इन सब चीजों को भोग के लिए स्वप्नों में ले आता है। भक्तिपूर्ण अभ्यास द्वारा हमें केवल अपने को अनावृत करना पड़ता है। यदि आप जीवन के असली अमृत का स्वाद पाना चाहते हैं, तो भाग्य के उतार चढ़ाव की परवाह किये बिना अदम्य साहस के साथ मैदान में आगे आइये। हमारे जीवन के लिए, उस चीज की जरूरत है, खैरात या भीख की नहीं। सच्चा त्याग काम या पद का त्याग कर जंगल में चले जाना नहीं है, बल्कि अपने खुद का विसर्जन है। सच्चे जिज्ञासु में उसी की जरूरत है।

आपने मुझसे निर्विकल्प समाधि के बारे में पूछा। निःसन्देह यह एक योग-सम्बन्धी उपलब्धि है, पर इससे आपकी समस्या का समाधान नहीं होगा। वह आपको मोक्ष की अवस्था तक ला

सकती है पर मुक्ति (लिबरेशन) कुछ और ही चीज है, जैसा "सत्य का उदय" में समझाया गया है। जब आप ईश्वर के सदृश बहुत अधिक सूक्ष्म हो जाते हैं, केवल तभी आप मुक्ति के योग्य होते हैं। हम अपने अभ्यास में उसी के लिए कोशिश करते हैं।

मान लीजिये कि आपको निर्विकल्प समाधि हासिल हो जाती है। फिर भी कल्पना किसी न किसी रूप में बनी रहती है। इसके अतिरिक्त, निष्क्रियता की अर्जित अवस्था बराबर नहीं रह सकती, क्योंकि हमें अपने कर्तव्यों को पूरा करने में भी लगना पड़ता है। पर मान लीजिए कि हम उनकी फिक्र छोड़ भी दें, फिर भी शरीर-रक्षा (हमारे पुनीत कर्तव्यों में से एक) तो बच ही रहती है और वह पूर्णता की प्राप्ति के लिए भी अपरिहार्य है। यदि एक सी दशा बराबर बनी रहती है तो स्पष्टतः हमें उसका भान नहीं रह सकता। सच्ची समाधि की अवस्था वह है जिसमें हम शुद्ध असलियत से प्रति क्षण जुड़े रहते हैं, भले हम सारे समय सांसारिक कामों और कर्तव्यों में व्यस्त रहें। यह सहज समाधि नाम से जानी जाती है, जो उच्चतम उपलब्धियों में से एक है और निर्वाण का आधार ही है। शब्दों द्वारा उसके गुण नहीं बताये जा सकते पर जो उसमें स्थित रहता है वह उसका अनुभव कर सकता है। यह उतना सरल नहीं है जितना इसका नाम बताता है।

संत कबीर ने इसका बहुत बखान किया था और यह प्राप्त करने योग्य है।

मैं आपको एक चीज और बता दूं। सही अभ्यास के लिए कुशल गुरु की खोज में लगिये। जब वैसे गुरु आपको मिल जाँय, तो उनके सम्मुख अपने को समर्पित कर दीजिए। मैं समझता हूँ कि जो आपकी जरूरत थी उसके बारे में मैं काफी कह चुका हूँ और अब आपके लिए सच्चे अभ्यासी की भूमिका निबाहना और ध्येय को प्राप्ति के लिए साधन अपनाना रह जाता है। तीन चिह्न बताते हैं कि हम ध्येय के निकट पहुँच रहे हैं। वे हैं ईश्वरीय काम, ईश्वरीय प्रज्ञा और ईश्वरीय विचार। अपने में इनको विकसित करने की कोशिश कीजिए। उसके लिए हमारे पास यौगिक प्राणाहुति पर आधारित एक सरल विधि है, जो अभ्यासी को मार्ग में बहुत मदद करती है। इसकी कारगुजारी का केवल तभी पता लगता है जब अभ्यासी कुछ दिन उसका अभ्यास करता है। हम आसान विधि अपनाते हैं क्योंकि हमें सीधी साधी चीज पानी है। यदि यह धारणा हृदय की गहराई में जम जाय, तो अवश्य ही फल जल्दी मिलेगा। अब क्या आपको मुझसे कुछ और पूछना है? मैं समझता हूँ कि एक बात रह गई है और वह है -पूर्णता कैसे प्राप्त करें? क्या यह बात नहीं है? मैं आपको एकदम साफ बता दूँ

कि यह जरा भी मुश्किल नहीं है बशर्ते कि आपको सुयोग्य मार्गदर्शक मिल जाय। अब ऐसे की ही खोज में लगिए। मेरी आपको यही दोस्ताना सलाह है। और जब वे आपको मिल जाँय, तो आप अपने को पूरी तरह उनके हवाले कर दीजिए। उनका साथ आपको बहुत कुछ जाहिर करेगा और वह उनको (पूरी तरह) समझने की एक विधि भी हो सकती है। मैंने आपका बहुत समय नष्ट किया है क्योंकि जवाब में एक वाक्य ही काफी था। वह यह है: अपने अन्दर खोजो और "उसे" खुद अपने में पाओगे। गुरु वहीं है। पर कब? केवल तभी जब तुम वहाँ नहीं रहोगे।

समस्या : उसका समाधान

जब आत्मा ने शरीर रूपी वस्त्र धारण कर लिया, केवल तभी आवरण के रूप में उसका उलटा स्वरूप प्रकट हुआ। अर्थात् यह सब एक रस्सी की तरह का हो गया जिसने ऐसा स्वरूप बहुत सी गाँठों के पड़ने के बाद, ग्रहण किया। प्यारे भाई, हमने आदि काल में ही आत्मा के साथ उसके उलटे रूप को भी चेतनायुक्त कर दिया है। क्या आपने नहीं देखा है कि आग और पानी के मिलने से लपक दुगुनी हो जाती है और जब उसमें हवा भी मिल जाती है तो उससे चिनगारियाँ फूटने लगती हैं और लपक भी अनुरूप मात्रा में बढ़ जाती है? यह

लपक क्या है ? यह प्रकृति की विभिन्न क्रियाएँ हैं जो आत्मा की शक्ति द्वारा घटित हुई। अब ये चीजें यानी मिट्टी, पानी, आग, हवा के काम निगाह में आये। पर निगाह उसकी ओर, जो असलियत थी, नहीं गई। वह क्या था जिसने उनमें दुरुपयोग के कारण, ऐसी दशा पैदा कर दी जिसके कारण असलियत, जिसका कार्य परदे के पीछे था, निगाह में नहीं आयी ? न यही समझ में आ सका कि "उसे" ऐसे काम क्यों करने पड़े जिनका परिणाम विनाश था। उस काम का कारण यह था कि असलियत (सृष्टि-निर्माण के) उस संकल्प के सहित जीवात्मा के सृष्टि बनाने के संकल्प के साथ मिश्रित हो गयी। अब बहुलता (यानी सृष्टि के निर्माण) की धारणा एकता का उलटा है या एक तरह से दोनों चीजें एक दूसरे के विपरीत हैं। दूसरे शब्दों में, यह दूसरी चीज जो संकल्प के प्रभाव से बनी बताई जाती है, मूल वस्तु से अधिक स्थूल है। लेकिन यह दोनों चीजें इतनी गहरी मिली हुई आयीं कि उन्होंने मिल कर विचार को—सृष्टि-निर्माण के विचार को—त्वरित किया। और उसी तरह से उनका काम भी, आग और पानी के मिलने से जो होता है, उसके समान था।

हम आत्मा कुदरत से लाये जिसमें चेतना का भी कुछ अंश था और यह चेतना जीवात्मा के संकल्प का परिणाम था, जिसके कारण आकृतियाँ प्रकट हुईं। अब हमारे संकल्प का

परिणाम है कि हमने अपने साथ की चीजों को भी अपने विचार की शक्ति से चेतन कर दिया। उसके पहले क्या था? वही जो आत्मा से भिन्न होता है आत्मा का गुण शान्ति है और शरीर, जो आत्मा से उलटा होता है, उसका गुण शान्ति का उलटा होता है। पर उसके निर्माता हम ही हैं और यह हमारी ही करनी है। अब जैसा ऊपर बताया गया है, यह लपक ही अशान्ति—कष्ट और पीड़ा—है। और हमारे कर्मों के फलस्वरूप बनती है। यदि उस चीज को शक्ति देने से रुक जाने की योग्यता हममें आ जाय, तो उसकी वही दशा होगी जो उन पौधों की होती है जिन्हें सींचा नहीं जाता। अब यह कैसे संभव है? यदि हम अपने विचार को, जो अभी भौतिकता और शरीर की ओर मुड़ा हुआ है, आत्मा की ओर घुमा दें, तब वे चीजें जो हमारे कर्मों के फलस्वरूप कष्टों के रूप में बनती हैं, धीरे धीरे गायब हो जायेंगी और दृष्टि को आत्मा की ओर मोड़ने से जो प्रभाव उत्पन्न होता है, उसको भी प्रभावित करेगा। सफाई की क्रिया से धीरे धीरे उसकी दशा ऐसी हो जायेगी कि लपक गायब होने लगेगी। उसकी दशा वह होगी जो संकल्प और जीवन से प्राप्त चेतना को होश के साथ आत्मा की ओर घुमाने के कारण होती है।

सृष्टि अस्तित्व में आ गई। चेतना के अवतरण के तुरन्त बाद हम उस दुर्बल रोगी की तरह हो गये जिसे कुछ 'टानिक'

दिया जाता है। उसके परिणाम स्वरूप वह और बदपरहेजी करने लगता है और उस बदपरहेजी के कारण कष्ट झेलते हुए मृत्यु-शय्या पर पहुँच जाता है। टानिक दिये जाने में कोई गलती नहीं थी पर दोष था उसके गलत और अनुचित उपयोग में; और पीड़ा उस हद तक बढ़ गई कि दवा की जरूरत और तीव्रता से होने लगी। मैं फिर कहता हूँ कि यदि कोई बीमारी न रहती, तो शुरू में जो तन्दुरुस्ती थी उसकी किसी को याद न रहती। केवल रोगी ही तन्दुरुस्ती के मूल्य का आदर कर सकता है। इससे बरी होने पर ही तन्दुरुस्ती के चिह्न प्रकट होते हैं।

आप पूछेंगे कि कष्टमय मानी जाने वाली चीजें—या मूल तत्त्व की उलटी चीजें—कैसे शक्ति पाती हैं? उत्तर है कि चेतना-शक्ति का बल, उनको उस मात्रा में शक्तिवान बनाता है जिस मात्रा तक हम उन पर ध्यान देते हैं, और धीरे धीरे वे इतनी शक्तिवान हो जाती हैं कि वे हम पर या हमारे विचारों पर हावी हो जाती हैं। यही बात भक्ति में भी होती है। यदि हम अपना ध्यान मूल या ईश्वर की तरफ मोड़ लेते हैं, तो चूँकि ईश्वर स्वयं शक्ति है, भक्ति में भी शक्ति आने लगती है। तब दूसरी शक्ति यानी ईश्वर की शक्ति उतरने लगती है और अवांछनीय चीजें स्वतः कमजोर पड़ने लगती हैं। चूँकि ये चीजें हमारे अधीन हैं, हम उन्हें शक्ति प्रदान करते हैं। और चूँकि वह चीज

ईश्वर के अधीन है, उसे वहाँ से शक्ति प्राप्त होती है। आशय क्या है ? यदि हम सच्चे अर्थ में अपनी दिलचस्पी ईश्वर की ओर मोड़ लें, तब यह सारी चीजें अन्त में फीकी होकर मिट जाती हैं और धीरे धीरे परिणाम में वह दशा आती है जिसका वर्णन भगवान कृष्ण ने किया है। वह दशा क्या है ? मनुष्य अपने को क्रियाशून्य अनुभव करने लगता है और यह दशा जब बढ़ती है और उच्च स्तर पर पहुँच जाती है, तब संस्कारों का बनना रोक देती है। और यदि किसी ने इस दशा में प्रवेश पाया और आगे कदम बढ़ाये, तब क्या बचता है ? उसका एक भाग होगा जीवन-काल में ही मुक्ति जिसे जीवन-मोक्ष-गति कहा जाता है। यह कैसा शब्द है जिसे लोग अनेक तरह से प्रमाणित करना चाह रहे हैं। पर प्यारे भाई, कितनी हलकी और आसान चीज यह है। और विश्वास रखिये, इसे भी पाना बहुत आसान है। आसान चीज सदा बिलकुल अपने आप या आसानी से हासिल होती है।

वह चीज इतनी आसान है कि कोशिश करने पर वह ढेरों लोगों को आसानी से प्राप्त हो सकती है। इस दशा को प्राप्त करने की राह सामान्यतः उन लोगों ने बताई है जो वस्तुतः उस राह को जानते ही नहीं, न उन लोगों ने किसी ऐसे व्यक्ति के माध्यम से प्रयत्न किया है जो जीवन में इस तरह के क्षेत्र में प्रविष्ट हुए हों। वे इलाज ऐसे लोगों के पास खोजते हैं जो

बिलकुल नौसिखिये हैं और विषय पर सदा केवल बोलते भर रहते हैं। वे ऐसे लोगों से बहुत प्रभावित होते हैं जो मंच से बिना तैयारी के भाषण देते हैं। यों कहा जाय कि असली चीज तो प्रकृति पर अधिकार पाने वालों के निश्छल हृदय में में है। यह चीज लोगों को शायद ही मिलेगी। क्यों ? क्योंकि वे आसान चीज को आसान तरीके से पाने की कोशिश नहीं करते। ईश्वर करे वह दिन आये जब लोग, देवताओं के लिए भी दुर्लभ, सच्चे जीवन के अमृत को चखें। लोग सदा अपनी अपनी गाथा पर सोचने में लगे रहते हैं। कुछ देर के लिए एकान्त में बैठिये और ईश्वर का कम से कम उतने बलपूर्वक चिन्तन कीजिए जितना आप अपनी कठिनाइयों का करते हैं। तब क्या होगा ? अपने ईश्वर की अनुभूति उतनी ही सरल है जितना अनगढ़ रूप में सांसारिक चीजों को पाना।

तकलीफ—उसका प्रारंभ और अन्त

जो दुनिया में पैदा हुआ है उसके लिए तकलीफें झेलना लाज़िमी है। वह उनसे बच नहीं सकता। इसी से तपस्या का जीवन अपना कर हम उनसे पीछा छुड़ाना चाहते हैं। ऋषियों ने तो अपने को पूरी तरह तपस्या में लगा दिया था। परम विशुद्ध ईश्वरीय विचारों में अपने को लगाने के अलावा इन तकलीफों से पार पाने की और कोई दवा नहीं है। जैसे नदी से निकली नहरें उसे कमजोर करती हैं, उसी तरह हमारे

खयाल मुख्य धारा को छितरा देते हैं। यदि बहुत सी नहरें नदी में से निकाल दी जाँय, तो नदी के बहाव में तेजी नहीं रहती। यही बात हमारे साथ है। हमारे विचारों में सदा जैसे पंख लगे रहते हैं और इसलिए उन्होंने मुख्य धारा को कमजोर बना दिया। पूजा के समय हम इन चीजों को अंदर खींचते हैं और एक धारा में संघटित करते हैं। विचारों में वही शक्ति आ जायेगी जिससे बहुत सी नहरें निकलती हैं। इसलिए जो प्रक्रिया हम अपनाते हैं वह यह है कि विपुल आकाश में हम अधिकाधिक गहरे पैठते जाते हैं। "उसकी" ओर जाने का बल चारों ओर छितराने वाले पानी को पवित्र विचारों की ताकत की तरफ खींचता है। परिणाम होता है कि छितरी हुई फालतू चीजें मुख्य और सर्वश्रेष्ठ धारा में आ मिलती हैं, जो हमारे मुख्य ध्येय और गन्तव्य सर्वशक्तिमान (ईश्वर) की ओर बहने लगती है।

लगाव से जो भी उपजता है वह तकलीफ है। दर्द और मजा दोनों तकलीफों की ओर योगदान देते हैं। महात्मा बुद्ध ने कहा था, "यदि आदमी पैदा न हुआ होता तो वह इन तकलीफ भरी अवस्थाओं से न गुजरता। जो दशा जन्म का कारण बनती है वह संकल्प की शक्ति है जो जन्म लेने की प्रवृत्ति में बदल जाती है। इस प्रवृत्ति का कारण दुनिया से हमारा लगाव 'या दुनिया की चीजों को कस कर पकड़ना है और यह लगाव चीजों, रूपों और शब्दों का मजा पाने की

हमारी प्यास या लालसा के कारण है। हमारी लालसा का कारण सुखद अनुभूतियों से मिला हुआ हमारा पहले का अनुभव है। पर इन्द्रियों का अनुभव इन्द्रियों के वस्तुओं से सम्पर्क के बिना नहीं हो सकता और यह सम्पर्क हो नहीं सकता था यदि पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और मन नहीं होते। ये छ अंग अपने अस्तित्व के लिए दैहिक मन-संस्थान पर निर्भर करते हैं जिससे मनुष्य का इन्द्रियगम्य अस्तित्व बनता है। यह संस्थान माँ के गर्भ में धीरे धीरे बढ़ नहीं सकता था यदि वह मृत या चेतनाशून्य होता। पर गर्भ के भ्रूण में जो चेतना उतरती है वह पिछले जन्मों के संस्कारों का प्रभाव भर है। वे संस्कार जिनसे हम पुनर्जन्म पाते हैं, अविद्या के कारण बनते हैं। यदि यह सब पूरी तरह समझ लिया ज़ाय तो पुनर्जन्म होने वाला कोई कर्म हमारे हाथों होगा ही नही।"

मैं गौतम बुद्ध द्वारा निर्धारित इन विचारों से पूरी तरह सहमत हूँ। यदि हम अपनी शक्ति भर अपने मुख्य ध्येय की ओर चलते जाँय तो संसार का खयाल तो दूसरे दरजे का हो जायेगा। ध्यान-प्रक्रिया के परिपक्व होने तक अभ्यास करते रहिए। यह ध्यान की अन्तिम अवस्था है। जब हम असलियत॰ से मिल कर एक हो जाते हैं तब उसके बाद आने वाली चीजें इतनी अंधेरी हो जाती हैं कि हमें उनका बोध नहीं होता। दूसरे शब्दों में, इस तरफ हम अंधे हो जाते हैं और असली

चीजों के लिए हमारी निगाह सुधर कर इस स्तर की हो जाती है कि हम पूरी तरह अपने को भुला बैठते हैं। जब यह दशा आती है तब हम अनुभव करते हैं कि हमें मुक्ति की अवस्था में हैं। यदि यह दशा पक्की हो जाती है तो सारे कष्टों का अन्त हो जाता है—पीड़ा, विषाद, भोग, सुख कुछ नहीं रहते। शरीर का यंत्र अब, हम पर कोई छाप छोड़े बगैर, काम करता रहता है। दूसरे शब्दों में, शरीर स्वचालित मशीन की तरह काम करता है, जो अपने आप जरूरत के माफिक चलती रहती है। अब सब चीजों का अन्त हो जाता है और नये संस्कार नहीं बनते। यह वह बिन्दु है जहाँ हम अपने आप पूरी तरह से अपने को समर्पित कर देते हैं। भगवद्गीता का यही सार (तत्त्व) है। यह वह दशा है जिसकी स्वर्गदूत भी कामना करते हैं। पर यह केवल मनुष्यों के लिए आरक्षित है। प्रिय मित्र, क्या आप इसके लिए लालायित नहीं हैं ? मैं समझता हूँ कि हममें से हर किसी को इस लक्ष्य तक पहुँचने के लिए प्रयास करना चाहिए। यह चीज उतनी मुश्किल नहीं है जितनी लगती है, और मुझे तो इतनी आसान लगती है जितनी कोई भी चीज। पवित्र विचारों में तल्लीनता से इस ध्येय की प्राप्ति हो जाती है।

कम्पन, ध्वनि और प्रतीक

जो कुछ नीचे आया या उतरा, बढ़ कर फैल गया। जो कुछ दिखलाई पड़ा या महसूस हुआ उसकी दशा ऐसी हो गई जैसी

उस पानी से भरे बरतन की जिसमें से जब पानी छलकता है तो अधिकाधिक स्थान में फैलता जाता है। और तब इस सैलाब को हाथ में लेने के लिए ऋषि लग गये और उनका ध्यान भी इधर था क्योंकि यह आदि काल था। उस समय तक उनमें कोई संस्कार नहीं पाये गये। चीज जिस तरह जाहिर हुई वैसी ही उनकी जानकारी में आई। बेशक यह तो हुआ कि किसी का ध्यान उस ठोस चीज की तरफ गया जिसका फैलाव बढ़ गया था और दूसरे की नजर उस पर पड़ी जो धार की तरह थी पर जिसमें छितराव कम था। वह ठोस चीज क्या हो सकती थी ? वे चीजें जो हर किसी की जरूरतों के लिए आवश्यक थीं। इसलिए वे उनमें गये और अधिक सूक्ष्म चीजों को अधिक सूक्ष्मदर्शी ऋषियों के लिए छोड़ दिया। निस्सन्देह आग, पानी और हवा की जरूरतें तो होती ही हैं। उन्हें समय समय पर अपनी गति के अनुसार काम करना पड़ता है। ऋषियों ने केवल इन्हीं चीजों को हाथ में लिया और उनकी अन्दरूनी हालत में ऐसा मोड़ पैदा किया कि जिस जगह पर मोटी धार का प्रभाव पड़ रहा था उसी जगह से उनमें हलचल पैदा की। इसलिए अग्नि, वायु, आदि को ठीक उसी जगह से प्रेरणा मिली जहाँ से वे जुड़े थे और जहाँ मोटी धार का वांछित प्रभाव था। मेरी नम्र. राय में वह नजर सबसे पहले उन तत्वों पर पड़ी जिनमें चैतन्य की शक्ति थी। इसलिए आप देखेंगे कि शुरू में केवल ऐसे मंत्र रचे गये जिनसे वे परिणाम

निकल सकते थे जो हमारे जीवन को कायम रखने के लिए और उसके निर्वाह के लिए आवश्यक थे। यह भी एक जरूरी चीज थी।

एक लम्बे अरसे के बाद तत्वों में व्यस्त रहने के उपरान्त, यह महसूस किया गया कि लगातार उसकी छान बीन करने में चिन्तन उसी पर रुका रह गया था। इसके आगे, उन्होंने उस मूल धारा पर, जिसे अध्यात्म कहा जायगा, फिर चिन्तन शुरू किया। इसका परिणाम हुए उपनिषद् और यह उनके सही चिन्तन का फल था। अब क्या आप इससे इस नतीजे पर न पहुँचेंगे कि इसमें विकास का रूप कायम रहा है और यह बौद्धिक प्रयास का इतिहास बन गया ?

ऊपर की बात सिर्फ एक भूमिका और अनपढ़ का उद्गार है और उसके मानसिक चिन्तन का फल (उसके परिपक्व विचार की तलछट) है। अब मैं मुख्य मुद्दे पर आता हूँ।

वेद वास्तव में वह दशा है जो सृष्टि के निर्माण के पूर्व थी। ईश्वर आपको उस दशा का आह्लाद प्रदान करे। आपको भी वह मिलेगा। इसलिए यह बिलकुल सच है कि वेद सृष्टि-निर्माण-काल में अस्तित्व में आये। उन्हें पुस्तक का रूप दिया गया। यह ऐसा है जैसे हालत को वस्त्र पहना दिया गया हो। उस समय क्या मौजूद था ? वही मथने वाली हालत और

परमाणुओं की रचना। जो चीज परमाणु बनी वह मन्थन क्रिया का परिणाम थी। दूसरे शब्दों में, यह उस चीज से जुड़ी है जो मन्थन का परिणाम है। अब नतीजा चाहे जो हो—और इसने कई शकलें अख्तियार कीं—उनकी मानसिक स्थिति उनके मूल (स्रोत) में रही। और वह हालत जो भी रही हो, उसे निश्चित रूप से वैज्ञानिक कहना चाहिए क्योंकि यह कभी नहीं हुआ कि आक्सीजन और हाइड्रोजन के मिलने से पानी न बना हो। मैं सिर्फ उस चीज को वैज्ञानिक कहता हूँ जो हमेशा एक नतीजा दे, चाहे जो कोई उस पर प्रयोग करे। अब, नतीजा चाहे जो हो, जब निगाह इसकी मौलिकता पर गयी तो उससे इसकी उत्पत्ति का ज्ञान हो गया। अब वैदिक ऋषि इन धारों के मंथन से पैदा मद्धिम आवाज को आधार मान कर, "उसको" खोज में लगे रहे जिसकी यह आवाज थी। इसलिए ऋग्वेद के शुरू के कुछ हिस्सों के मंत्रों के जिन अंशों को पढ़े जाते हुये मैंने सुना है उनसे जाहिर होता है कि ऋग्वेद में इसी "शब्द" का उपयोग किया गया है। दूसरे शब्दों में, असल तत्त्व को पहचानने की यही कुंजी थी। अब जब उन्हें कुंजी मिल गई और असली चीज उद्घाटित होने लगी, तो उस सारी चीज ने एक और मोड़ ले लिया। आध्यात्मिक आशय के लिए एक नया अध्याय खुल गया और खयाल की उड़ान और तेज होने लगी। जब ऋषियों को शब्द के मार्फत असलियत की झलक मिल गई तो उन्होंने उसमें और गहरे डुबकी लगाने का इरादा किया। और जब उन्होंने उसमें

डुबकी लगाई और कड़ी का 'वह' हिस्सा उनकी पकड़ में आ गया, तो पहला पाठ जो उन्होंने सीखा वह "एकोऽहं बहुस्याम्" (एक के अनेक होने) की भावना थी। पर यह तो असलियत का दुनियाबीपन यानी नीचे दरजे का खयाल था। अब खयाल और ऊँचाई पर गया और उनके हाथ में कड़ी का ऊपर वाला हिस्सा आ गया। उन्हें इस बात का बोध हो गया कि यह धाराओं की गति से उत्पन्न प्रतिध्वनि है, और इसके परे भी कुछ है। खोज अब भी जारी रही और 'एकोऽहं बहुस्याम्' के इस खयाल के आगे गयी। और उस तरह का दुनियाबीपन अब त्याग दिया गया। दूसरे शब्दों में, उस असली चीज का स्थूल रूप जो शुरू में हमारी निगाह के सामने था, छिप गया और हमारी उछाल उसके आगे शुरू हुई। तब क्या हुआ? द्वैत का विचार भी, जिसमें यह शंका निहित थी कि इसकी सीमा क्या हो सकती है, बुदबुदाने लगा। उसने 'स्व' को तौला और इस पर गहराई से चिन्तन किया। गहराई से चिन्तन करने पर वे इस विचार पर पहुँचे कि केवल इन्सानी फितरत के कारण हम अपने को तौलते आ रहे हैं। जब यह पूरी तरह हमारी समझ में आ गया तब हमारा स्वभाव और खयाल उस असली चीज से जुड़ गये जो हममें जमी हुई है। यह ऐसा कुछ हुआ जैसे खयाल उस धारा में तैरने लगा। वे और आगे बढ़े और उन्हें यह संकेत मिला कि यह सब महज मक्खन था, जो मंथन का परिणाम है, पर असलियत नहीं था। अब कदम

और आगे बढ़े। यह बीच के हिस्से के पास की पहुँच है जिसका ऊपर वर्णन किया गया है। और अधिक उन्नति करने पर, परमानन्द की महक का अनुभव होने लगा। अब यह सवाल उठ सकता है कि कैसे अनुभव होने लगा जब विचार उसके साथ एकाकार हो गया था। इसका सिर्फ यही जवाब है कि जिन कणों को हमने अपने खयाल में पकड़ लिया था उन्हीं को ठोस अवस्था यह मक्खन है। परमानन्द की अवस्था आई भी, हम उसमें रहे भी, हमें उसका अनुभव भी हुआ और हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि यह वही चीज है जिसकी हम तलाश कर रहे थ। कुछ लोग वहीं रुके रह गये और शेष लोग इस सच्चिदानन्द दशा के भी आगे गये। और बढ़ते चले जाने पर, ऐसी अवस्था ने उनको निगल लिया कि वे अद्वैतावस्था में जकड़ गये। सम्भवतः इसके आगे वेद मौन हैं क्योंकि उन्होंने उसे अनिर्वचनीय बताया है और 'नेति' 'नेति' (यह नहीं, यह नहीं) घोषित किया है।

अब विज्ञान का वही सवाल एक बार फिर उठता है। मैं समझता हूँ कि किसी हद तक मैने जवाब दे दिया है। पर यदि आप और अधिक (स्पष्टीकरण) चाहते हैं तो हम कहेंगे कि हम उस रास्ते पर हैं और हमने अपने को ऐसा बना लिया है कि हम असलियत के मेल में हैं। तब यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि सिर्फ असलियत हमारी नजरों के सामने है।

नही, हम खुद वैसे हो गये हैं। हम सच्चे ज्ञान का आवास हो गये हैं। नहीं, अब हम खुद ज्ञानरूप हो गये हैं। 'य' का यह कथन कि वे गणितीय प्रतीकों से ज्यादा सच्चे हैं सही हो सकता है जब हम उसमें घुल जायें और वही चीज जो सही है नजर के सामने आ जाय। जो कोई उस रास्ते पर जाता है, वही चीज उसके सामने आती है। अब आप सोच सकते हैं कि इसमें कुछ शायराना बातें हैं जहाँ अतिशयोक्ति की भी सम्भावना रहती है। हाँ, प्यारे भाई, असली चीज को दिखाने के लिए उसके पास पड़ोस कुछ रचना करने से उसे विचारों द्वारा समझने में सहायता मिलती है। मैं भी उससे काम लेने को अकसर मजबूर हो जाया करता हूँ। मिसाल के लिए मैं एक पंक्ति लिखता हूँ :—

"प्रेमी दुर्बल है और प्रिया बहुत सुकुमार है। कोई और घूँघट हटाये।"

अब यदि आप इसके अर्थ का मनन करें तो यह प्रमाणित हो जायेगा कि प्रेमी और प्रेमपात्र दोनों क्रियाशून्य हैं। जो असली हालत है, अर्थात् वह हालत जो असलियत है, इसी तरह अभिव्यक्त होती है।

हमारा सिद्धान्त है कि मनुष्य जब पहले पैदा हुआ तो वह पूर्ण था। इसलिए यह स्पष्ट है कि यह गाँठें आदमियों की खुद

पैदा की हुई हैं और जो मूल स्रोत तक निगाह के पहुँचने में बाधक हैं। उसके काम काज ने उसके खुद के अन्दर एक संसार निर्मित कर दिया है। कारण है कि सृष्टिकर्ता ने तो हमें शुद्ध और स्फटिक के समान स्वच्छ दशा में भेजा। और यही श्रेष्ठ सृष्टिकर्ता की पहचान है। अपने ऊपर आई हुई गंदगी और धूल का दायित्व हमारा ही है। हेमने खुद संस्कार बनाये हैं जो परदे पर परदा बनते गये और जिन्होंने हमें, कोये में रेशम के कीड़े की तरह, पूरी तरह ढक लिया। असलियत के महासागर से निकलने पर हम एड़ी से चोटी तक केवल असलियत थे। अब चूँकि हमारी प्राथमिक दशा वैसी थी, हमारी निगाह बिना किसी रुकावट के सीधे "उसको" देख सकती थी और उसे "उसका", वेद जिसका रूप माने जा सकते हैं, ज्ञान था। संस्कृत भाषा अधिक प्राकृतिक मानी जाती है। इसका कारण है कि वह प्रारम्भ काल था। और बातचीत करने और एक दूसरे को समझने के लिये वे लोग जैसा अनुभव करते थे वैसे ही जबान को हिलाते डुलाते थे। यदि आप संस्कृत की वर्णमाला पर गम्भीरतापूर्वक विचार करें तो देखेंगे कि इसमें प्राकृतिक स्पन्दनों के रूप में उतार और चढ़ाव हैं। और इस भाषा में उन्होंने प्रत्येक स्पन्दन का अनुभव करके लिखा और उन्होंने उसे "संस्कृत" (ईश्वरीय) कहना शुरू किया। दैवी संदेश उन्हें किसी विशेष भाषा के मार्फत नहीं मिला। दैवी संदेश अब भी आते

हैं पर अधिकतर और सही सही उनके पास जिन्होंने अपनी मूल अवस्था फिर से प्राप्त कर ली है और जो मूलस्रोत से जुड़ गये हैं। और वह सदा व्यक्ति को उस भाषा में आता है जो वह जानता है। वह मन में कौंधती है और उन शब्दों के मार्फत जिन्हें उसने सीखा है, उसे उसका पता चलता है। स्वामी विवेकानन्द ने लिखा है कि दैवी संदेश अधिकतर कविता के रूप में प्रकट होते हैं। पर वैसा होता नहीं, कम से कम एक सच्चे जिज्ञासु के सम्बन्ध में जिसे पास पड़ोस की चीजों में फँस कर असलियत को खोना नहीं चाहिए। पास पड़ोस उस चीज की ओर इशारा करते हैं जो उनसे जुड़ी होती है, जैसे धुँआ उस आग की ओर इशारा करता है जिसका वह धुँआ है।

गुरुओं और शिष्यों की किस्में

कभी कभी मैं इन सवालों पर गौर करता हूँ: "इस गिरावट की क्या वजह है ? कौन सा रंग इस सारी चमक दमक का जिम्मेदार है ? मानव मन में उत्तेजना कौन पैदा करता है ? हमारी आँखें क्यों इधर उधर घूमती रहती हैं और नालियाँ और गढ्ढे बनाती हैं ? यह सब क्या है और कौन इसके लिए जिम्मेदार है ? किसने ऐसा पर्यावरण बनाया—ईश्वर ने या खुद इंसान ने ? कौन उस पर गिलाफ पर गिलाफ चढ़ाता गया ?"

जो जवाब मुझे मिलता है वह यह है : ईश्वर ने हमें रचा ताकि हमें स्वतंत्रता, सच्ची स्वतंत्रता, मिल सके। पर उस काल की घटनाओं ने क्रम को एक अलग ढंग से मोड़ दिया। हमारा मन मूल स्वतंत्रता से भटक कर इन्द्रियों की ओर दौड़ पड़ा। हमें भी ऐसा मजा आया कि इसे बढ़ावा मिला। जिनका इन्द्रियों की ओर झुकाव हुआ वे उन्हीं में डूब गये। अगर वे उनके बाहर निकले भी, तो उन्होंने केवल वे ही चीजें बनाई जिन्होंने उनकी इन्द्रियों को बढ़ावा दिया और सन्तुष्ट किया और वे उन चीजों से ऊपर नहीं उठ सके। उनका मिलना ऐसे लोगों से हुआ जिन्होंने उनसे ऐसी बातें बताईं जो उन्हें अच्छी भी लगीं क्योंकि वे उस केन्द्र का समर्थन करती थीं जो उन्होने अपने लिये रचा था। यह कैसे घटित हुआ ? यह उन लोगों से संपर्क के कारण हुआ जो रस तो इन्द्रियों में लेते थे किन्तु ऊपर आकाश की ओर देखने का स्वांग करते थे। वे हमारे महात्मा हैं। आप और हम चाहते हैं कि लोग अपने बनाये केन्द्रों का त्याग कर दें। पर वे ऐसा करने को तभी तैयार होंगे जब उनका रचा केन्द्र ईश्वरीय केन्द्र में शामिल मिलेगा। ये शब्द बहुत कठोर लग सकते हैं पर मैं यह लिखने के लिए मजबूर हूँ कि भेड़ों की रखवाली भेड़ियों के हाथों में है और सारा झुंड तितर-बितर है। अब भाई, उन सज्जनों की किस्मों पर गौर करिए जो हमारे बीच होने वाली

प्राय: हर चीज के लिए जिम्मेदार हैं और जिनमें से कुछ को हम गुरु मानते हैं। वे निम्नलिखित हैं :—

(१) गुरु सिफली—सबसे नीचे दरजे के गुरु
(२) गुरु किताबी—किताबों और ज्ञान वाले गुरु
(३) गुरु अज़ली—जन्मजात गुरु
(४) गुरु फ़ज़ली—उच्चतर दरजे के गुरु
(५) गुरु अज़ली फ़ज़ली—जन्मजात सबसे ऊँचे दरजे के गुरु

सबसे नीचे दरजे के गुरु वे हैं जो हमें भूत-प्रेतों की पूजा करने को कहते हैं और जिनको कुछ टोटकों की जानकारी है। किताबी गुरु वे हैं जो महज किताबों के बल पर दूसरों को अभ्यास करने को कहते हैं। उन्हें अभ्यासों के प्रयोजनों से और उन दशाओं से जिनमें वे लाभकर सिद्ध होते हैं, कोई मतलब नहीं। जन्मजात गुरु वे हैं जो विधियाँ बताते रहते हैं ताकि लोगों को किसी क्षेत्र में पूर्णता प्राप्त हो जाय बशर्ते कि वे भँवर में न फँस जाँय। पर यदि संयोगवश वे फँस जाते हैं, तो उन्हें छुड़ाना इन गुरुओं के बस का नहीं है। मैंने ऊँचे दरजे के गुरुओं के लिए जिन्हें ईश्वर के अनुग्रह और कृपा का आनन्द सदा मिलता रहता है और जिनमें उस अनुग्रह को, दूसरों को सुधारने के लिए, काम में लेने की सामर्थ्य है--अज़ली शब्द काम में लिया है। एक और किस्म अज़ली-फ़ज़ली की है जिसका मिलना

बहुत कठिन है। सबसे ऊँचे दरजे का यह गुरु सर्वश्रेष्ठ मूल अवस्था में पहुँचा हुआ और मूल से सदा जुड़ा हुआ होता है। इसलिए भाई, हमें ऐसे ही गुरु की खोज करनी चाहिए और यदि ऐसा गुरू न हासिल हो तो फज़ली गुरु से काम चलाना चाहिए। किताबी गुरु में हर तरह की शंका की गुंजाइश है। यह बिलकुल मुमकिन है कि उसका चाल चलन ठीक न हो। पर फ़ज़ली और अज़ली-फज़ली गुरुओं के बारे में तो ऐसा हो ही नहीं सकता। जिन लोगों का मन कुछ भी विश्वास न करने वाला है वे इसका विश्वास नहीं करेंगे चाहे आप कितनी ही बार इसे दोहराते रहें। कबीर के शब्दों में "मैं किसे यकीन दिला सकता हूँ जब पूरा परिवार ही अंधा है?"

जहाँ तक अजली गुरु (जन्मजात गुरु) की बात है, यद्यपि ऐसा गुरु ज्वार और भाटा से मुक्त मूल दशा से संयुक्त होता है, पर उसमें अपनी आन्तरिक दशा से दूसरों को प्रेरणा देने की क्षमता नहीं होती। पर फ़ज़ली गुरु ऐसा कर सकता है। वह अभ्यासी के अन्दर ईश्वर के अनुग्रह को भी भेज सकता है। इसके दो प्रकार हैं। जब अनुग्रह उसके संकल्प किये बिना स्वतः उसमें प्रवाहित होता है तो वह अपना भाग दूसरों की ओर भेज सकता है। अनुग्रह का प्रवाह होने के पूर्व वह ऐसा नहीं कर सकता। जो बोधपूर्वक अनुग्रह को भेज सकता है उसमें जब चाहे तब अनुग्रह को अन्तर्भावित करने और स्थानान्तरित करने

की क्षमता है। हमारे सहज मार्ग का एक एक प्रशिक्षक जानता बूझता हुआ प्राणाहुति देने वाला है क्योंकि प्रशिक्षण की विधि खुद ऐसी है। और अजली-फ़जली के बारे में क्या कहा जाय ? वह पलक मारते जो चाहे सो कर सकता है। ऐसे संत बहुत कम दिखलाई पड़ते हैं।

अब मैं आपको शिष्यों के किस्म भी बताउँगा :—

(क) स्वार्थी (ख) फ़जली (ग) अहली (घ) भक्त (ङ) मुराद। स्वार्थी शिष्य वे हैं जो सिर्फ अपना मतलब पूरा करना चाहते हैं। मान लीजिये कि एक आदमी को पता लगता है कि अमुक सज्जन महात्मा और भगवान के भक्त हैं, तो वह तुरन्त उनके पास भागता हुआ इस विचार से जायेगा कि उनके सम्पर्क से उसे कोई सांसारिक लाभ होगा। ऐसे आदमी जिनको केवल दुनियावी मामलों से मतलब रहता है कोई काम नहीं करते। वे सत्संग में केवल अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए शामिल होते हैं। वे खुशामद के जरिये अपना काम करा लेते हैं। उसके बाद वे खिसक जाते हैं। अगर उनका काम पूरा नहीं होता, तब भी वे पीठ फेर लेते हैं। उन्हें प्यार और लगाव से कोई सरोकार नहीं रहता।

फ़जली शिष्य वे होते हैं जो ध्यान में कभी कभी बैठते हैं—तब जब सुखद वातावरण के कारण उनका मिजाज ठीक रहता है। उनको दिल से कोई लगाव नहीं रहता। और अहली वे

होते हैं जिनमें ऊँची किस्म की पूजा के संस्कार होते हैं और जो पूजा करना और करते रहना चाहते हैं। उनमें से कुछ की तरक्की हो सकती है और भक्त के दरजे तक पहुँच सकते हैं। पर कुछ ऐसे होते हैं जिनकी शुरुआत ही भक्त की दशा से होती है और भक्त वह होता है जो अपने गुरु को बहुत अधिक प्यार करता है। वह अपने को अन्दर से गुरु से बराबर जोड़े रहता है। इस तरह के लोगों में वे सारे गुण होते हैं जो एक शिष्य में रहने चाहिए। इन भक्तों में से, मुश्किल से एक या दो मुराद की दशा हासिल करते हैं। मुराद वह है जो अपने गुरु का प्रेम-पात्र हो जाता है। दूसरे शब्दों में, गुरु का ध्यान सदा उस पर लगा रहता है। उसे परमप्रिय व्यक्ति भी कहा जा सकता है और ऐसे लोग बहुत कम मिलते हैं। इन दिनों मुराद शायद ही मिलते हैं और उसी तरह गुरु भी दुर्लभ हैं। श्रद्धेय लालाजी ने मुझे अपने एक खत में लिखा कि "इन दिनों मुरीद तो उतने दिखलाई पड़ते हैं जितने शरीर के रोमछिद्र पर मुराद बहुत दुर्लभ हैं।"

पदार्थ की असलियत

प्यारे भाई, आपने ठीक ही लिखा है कि पदार्थ की असलियत आपकी समझ में नहीं आती। अगर चीनी की गुड़िया में जान फूँक दी जाय तो वह अपनी असलियत नहीं समझ सकती। मतलब यह है कि पदार्थ में लगातार रहते रहते हम खुद

अपना माल अर्थात् 'वास्तविकता' खो बैठे हैं। केवल यही बाधा है। प्रकृति साधक से कुछ भी छिपाकर नहीं रखना चाहती क्योंकि रहस्य को जटिलतापूर्ण कहा जा सकता है और जहाँ कहीं भी जटिलता होती है, उसे माया के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जा सकता। प्रकृति एक खुली किताब है। पर हमने अपनी निगाह इतनी उलटी कर ली है कि हम उसकी तरफ कभी देखते तक नहीं। और प्यारे भाई, भोंडे ढंग से यह कहा जा सकता है कि हमारी खोपड़ी ही उलटी हो गई है। असलियत तब जाहिर होती है जब उससे उलटी ओर खड़े होते हैं। यानी यदि हम पदार्थ के विषय में विचार करें तो हम आत्मा की ओर भी खिसकते हैं। तब दोनों को तौल जोख कर हम सच्चाई का कुछ अनुमान लगा सकते हैं। अब बेशक मुझे वैज्ञानिकों का भंडाफोड़ करना है—आपको उस दल में शामिल नहीं करता। लोगों ने मुझे बताया है या खुद मेरे ही दिमाग में यह बात आई है कि वैज्ञानिकों ने इस हद तक काम किया है कि उन्होंने पदार्थ की शक्ति को मनुष्य की दासी बना दिया है। अब योग के लक्ष्य से, जो प्रकृति पर अधिकार पाना है, अधिक दूर और क्या हो सकता है ? पर प्यारे भाई, मामूली सर्कस के खिलाड़ियों ने भी बाघ जैसे जंगली जानवर को वश में लाकर अद्भुत करतब दिखाये हैं। विज्ञान की चीजों को दूसरी प्रभावहारिणी चीजों द्वारा पराभूत किया जा सकता है पर इस खूँखारपने को किसी तेजाब से नहीं दबाया जा सकता। इसलिए सर्कस का खिलाड़ी

वैज्ञानिक से बहुत बढ़ कर है। प्यारे भाई, इन्सानी दिमाग के विकास के कारण पदार्थ की शक्ति पर अधिकार पाया जा सकता है। पर आध्यात्मिक दिमाग का काम या विकास कुछ और ही चीज है जहाँ पदार्थ की ऊर्जा काम नहीं करती। इसमें ईश्वरीय समझदारी है जब कि उसमें मानवीय समझदारी है।

आपका विचार कि मनुष्य स्वभाव से दार्शनिक है, सही है और इसके प्रमाण भी हैं। जैसे ही बच्चा जन्म लेता है और थोड़ा बहुत देखने लगता है, उसके अन्दर एक कुतूहल का भाव आ जाता है जो सारे दुनियावी और रुहानी विज्ञान का सार है। कुछ लोग फलों का स्वाद लेने में लग जाते हैं, जब कि और लोग पेड़ गिनने में ही लगे रहते हैं। पर इन सबका आधार कुतूहल है। वैज्ञानिक पदार्थ की जटिलता में फँस जाते हैं पर जिज्ञासु इसे छोड़ कर उस छवि के पास आता है जिसके यह सब प्रतिरूप हैं। जब हमें संखिया के प्रभाव का ज्ञान हो जाता है तब हम मान लेते हैं कि हर चीज जिसमें यह मिला रहता है विष हो जाती है। या फिर इससे मिली हर चीज को हम विषैली समझ लेते हैं। अब इस जहर के कारण ही चीज जहरीली हो जाती है क्योंकि संखिया का यह गुण उस चीज़ के रेशे रेशे में रिस जाता है जिसमें वह मिलाया जाता है। ऊर्जा भी पदार्थ में उसी तरह काम करती है। यह उदाहरण आपके उस सवाल का हल है कि चैतन्य किस प्रकार सब में विद्यमान

भी है और साथ ही सबसे परे भी। आध्यात्मिक प्रगति के दौरान, अभ्यासी को ऐसी दशा हासिल होती है जिसमें पदार्थ का भी अस्तित्व महाप्रलय के बाद नहीं रहता क्योंकि यदि कुछ भी रह जाय तो महाप्रलय एक झूठा नाम होगा। मैं पदार्थ को नित्य नहीं मानता। केवल आत्मा नित्य है और यदि वह सब का कारण है तब एक ऐसा समय आता है जब उसको छोड़ कर और कुछ नहीं रहता। इसलिए यह साबित होता है कि पदार्थ की रचना सृष्टि के निर्माण काल में हुई। यह पदार्थ क्या था ? यह वे मन्थनकारी काम थे जो ठोस चीज बना सकते थे। इस उक्ति में कि हर चीज गोल दिखाई देती है कितना सुन्दर दर्शन निहित है। कारण यह है कि जब उस महान् शिल्पी ने सृष्टि-निर्माण का संकल्प किया और ऊर्जा का उपयोग किया तो क्रियायें गोलाई में प्रारम्भ हुईं जिससे परिपथ बन सके और ऊर्जा काम कर सके। जैसे जब आप प्राणाहुति देते हैं, तब भी आपकी ऊर्जा चक्राकार ढंग से काम करती है ताकि अभ्यासी उससे प्रभावित हो सके। और हम ध्यान में भी सत्संगियों का घेरा बना कर बैठते हैं क्योंकि इससे भी उनको मदद मिल सकती है। अब जब यही ऊर्जा घनी हो गई तो यही क्रियाओं के वेग के कारण ठोस या पदार्थ कहलाई। अब आपको अभ्यासी के अन्दर से यही ठोसपन हटाना है ताकि वह सिर से पैर तक चैतन्य हो जाय। मौलाना रूमी ने जो एक बादशाह भी थे और

फकीर भी, और जो शम्स-इ-तब्रेज़ के शिष्य थे, कहा है : "वह स्वयं मुक्त था और अपने द्वारा ही बन्दी भी हुआ।"

यह वास्तव में सृष्टि के एकत्व का वर्णन है, जिसे मैं नहीं मानता। मैं अभिव्यक्ति के एकत्व को मानने वाला हूँ। फिर भी यह इस बात पर काफी प्रकाश डालती है कि ऊर्जा ने एक भिन्न मोड़ ले लिया।

आपने लिखा है कि इस भौतिकता या आध्यात्मिकता पर पूरा अधिकार पाने के लिए कोई विधि होनी चाहिए। जब एक कारखाना चालू रहता है, तो ऊर्जा इंजन से आती है और इसके हर पुरजे को घुमाती है। अब यदि आप इसको अपने वश में लाना चाहते हैं और (इसलिये) इसका एक पहिया पकड़ लेते हैं तो नतीजा यह होगा कि आपके हाथ के कुचल कर टुकड़े-टुकड़े हो जायेंगे। इस तरह से आप उसको अपने वश में नहीं ला सकते। यदि आप उस मशीन को बंद करना चाहते हैं तो उस स्रोत पर अधिकार कीजिए जहाँ से इसको ऊर्जा मिल रही है। तब मशीन बंद हो जायेगी। अब यह साफ जाहिर है कि सांसारिकता पर अधिकार पाने के लिए आपको आध्यात्मिकता (चेतना) पर अधिकार पाना होगा और हम सब वही करते हैं। आप पहले से ही आध्यात्मिकता पर अधिकार पाने के उपाय जानते हैं—जिसके लिए अभ्यास और सत्संग नितान्त आवश्यक हैं। फिर भी मैं इस सिलसिले में कुछ बता रहा हूँ : अध्यात्म पर अधिकार पाने

के लिए आपको उसमें, जो अध्यात्म (चेतना) का कारण है, घुसना होगा। अब उसे कैसे हासिल किया जाय? जब हम उसकी ओर इस तरह उन्मुख होंगे कि उसकी विशुद्धता और ताजगी से आवेशित हो जायें, तब हमारा वातावरण बदल जायेगा और स्वाभाविकता की सृष्टि होगी। और आप जो भी चाहेंगे घटित होने लगेगा। प्यारे भाई, तैरते जाओ। उद्गम निश्चयतः मिलेगा। या अगर रुझान इतनी तेज हो जाती है कि नदी खुद आपके अन्दर अपने को उंड़ेल डालती है, तब फिर अभ्यास की कोई जरूरत नही रह जायेगी।

अब मैं आपके प्रश्न "मैं पदार्थ की असलियत नहीं समझ पा रहा हूँ" का उत्तर देकर आपको थोड़ी खुशी भी देना चाहूँगा। आप पदार्थ की असलियत तब समझेंगे जब आप अपनी असलियत का अनुभव करेंगे। तब आप पदार्थ को संचालित तक कर सकते हैं।

भाग ३

अमृतमयी वर्षा

"यद्यपि अपने को बहुत बुद्धिमान समझना निःसन्देह मूर्खता है, किन्तु अपने को बहुत मूर्ख या दुर्बल समझना और बड़ी मूर्खता है। हम जैसे भी हों, हमें अपने को ईश्वर की याद के प्रति समर्पित कर देना चाहिए और उनके आदेशों का जो हर किसी के लिए प्रायः एक हैं, पालन करना चाहिए । हमारे सामान्य कर्तव्यों की अपरिहार्य विशिष्टतायें उनमें सन्निहित हैं।"

अमृतमयी वर्षा

लोग एकाग्रता में डूबना चाहते हैं क्योंकि इसमें इन्द्रियों को आनन्द मिलता है। स्पष्ट है कि आध्यात्मिक साधना में यह सहायक नहीं हो सकता। एकाग्रता सीधे ही विचारों के दमन से संबन्ध रखती है। यह ख्याल हमारे मन में, सम्मोहन की जानकारी के बाद आया क्योंकि उसमें विचार का भौतिक बल बराबर काम में लाया जाता था। पर उससे कोई आध्यात्मिक मतलब सिद्ध नहीं हो सकता। यह किसी चीज की प्रकृति या विशिष्टता उघाड़ कर बता सकता है पर वह उसकी प्राप्ति में किसी भी तरह सहायक नहीं हो सकता। इसलिए वह ईश्वर की उपलब्धि में साधनरूप नहीं हो सकता। उलटे, इसका झुकाव लोगों को असलियत से दूर रखने की ओर है। ध्यान का आधार सर्वथा आध्यात्मिक है जब कि एकाग्रता का आधार केवल अहं भाव है। जब आप एकाग्रता साधना चाहते हैं तो निश्चय ही 'आप' वहाँ रहते हैं, पर जब आप ध्यान करते हैं तो आप किसी उच्चतर चीज की प्रतीक्षा में रहते हैं। इस तरह आप अहं भाव से दूर रहते हैं।

❀ ❀ ❀ ❀

पूरी सफलता पाने के लिए आत्म-विसर्जन एक मात्र रास्ता है। उसी का लगातार अभ्यास करना चाहिए। निस्सन्देह

प्रेम और भक्ति उसकी अपरिहार्य विशिष्टतायें हैं। अपने को विसर्जित करने पर शाश्वत जीवन, जो हासिल करने लायक सच्चा जीवन और जीवन का असली लक्ष्य है, मिल जाता है। गुरु के जीवन-काल में वह ज़्यादा आसानी से पाने लायक होता है क्योंकि तब उनकी शक्ति निरन्तर प्रवहमान रहती है। उसके बाद, जैसा लोग कहते हैं, "हर पतिंगे की बिसात नहीं कि बुझी हुई शमा पर जल मरे" (सोख्ताँ बर शमा कुश्त आरे हर परवाना नेस्त)।

❀ ❀ ❀ ❀

मनोमय प्रदेश, जो हृदय प्रदेश के बाद पड़ता है, अहं का क्षेत्र है। जब यह पार कर लिया जाता है तो व्यक्ति उस स्तर पर पहुँचता है जहाँ अहं भाव बहुत विरल अवस्था धारण कर लेता है। इसके आगे ज्यों ही अभ्यासी का केन्द्र-प्रदेश में प्रवेश होता है, अहं भाव पहचान में बदल जाता है। शुरू की अवस्थाओं में अहं भाव स्थूल प्रकार का होता है पर जैसे जैसे अभ्यासी उस क्षेत्र के चक्रों को एक एक करके पार करता जाता है वह अधिकाधिक विशुद्ध होता जाता है यहाँ तक कि वह अपनी पूर्ण विशुद्ध अवस्था धारण कर लेता है जिसे लगभग पूरे तौर पर अहं भाव का विनाश मान सकते हैं।

❀ ❀ ❀ ❀

महिलाओं के लिए ठीक निर्धारित समय पर पूजा करना उनके विविध कर्तव्यों के कारण, संभव नहीं है और इसलिए

उनके बारे में इसके लिए आग्रह नहीं किया जाता। पर वे अपना खाली वक्त इसमें लगा सकती हैं। उनके लिए यह एक खास रियायत है। इसके अतिरिक्त यदि वे अपने गृहस्थी के कामों में इस विचार के साथ लगी रहें कि वे ईश्वर के आदेशानुसार अपना कर्तव्य-पालन कर रही हैं तो वह सब पूजा में बदल जायेगा और अपनी ओर से बोधपूर्वक कोशिश के बगैर वे सारे समय इसी के साथ (पूजा-भाव में) रहेंगी।

❀ ❀ ❀ ❀

शिक्षा से केवल दिमाग का विस्तार होता है जब कि मन के विस्तार के लिए सबसे आवश्यक तत्त्व संस्कृति है जो हमारे विचार और कार्य के ढंगों को व्यवस्थित करती है। बिना दिल की किताब को ध्यान से पढ़े, महज किताबों की पढ़ाई से कुछ नहीं होने का। लेकिन चूंकि मैं बहुत पढ़ा लिखा नहीं हूँ इसलिए यह हो सकता है कि मैं शिक्षा का अर्थ गलत समझता होऊँ। मैंने जन्म लिया अज्ञान की अवस्था में, और अब मैं और अधिक अज्ञानी हूँ क्योंकि जब अध्ययन के लिए मैंने अपने दिल की किताब खोली, तो उसमें केवल एक शब्द—अज्ञान—पाया।

❀ ❀ ❀ ❀

सुकरात कहता है कि ज्ञान ही सद्गुण है। सद्गुण से उसका आशय इच्छाहीनता से है। उसके अनुसार वही शिक्षा

का सार है। यदि उच्च शिक्षा प्राप्त करके आदमी उस स्तर तक पहुँच जाता है, तो मैं समझता हूँ कि शिक्षा का उद्देश्य- और वह एक आध्यात्मिक अवस्था है—पूरा हो गया। वह कैसे प्राप्त किया जाय ? उसके लिए सीधी विधि सतत स्मरण है। यदि "विचार की अविच्छिन्न कड़ी" ये शब्द उसमें जोड़ दिये जाँय, तब विधि मुकम्मल हो जायेगी।

❀ ❀ ❀ ❀

आप बताते हैं कि आप अकसर छोटी छोटी बातों पर खीझ जाते हैं। आपने अपनी किताबों में इस बुराई के खिलाफ बहुत कुछ पढ़ा होगा फिर भी आप इस पर काबू नहीं पा रहे हैं। तब आपकी पढ़ाई से आपको क्या लाभ पहुँचा ? स्वामी रामकृष्ण परमहंस के बारे में कहा जाता है कि जब वे बचपन में बच्चों के एक स्कूल में पढ़ रहे थे, उन्हें एक पाठ याद करने को दिया गया। वह था : "सदा सच बोलो"। वह उसमें लगे रहे। जब कभी अध्यापक उनसे पूछते थे कि तुमने उस दिन वाला पाठ याद कर लिया कि नहीं, तो वे उत्तर देते थे, "जी, अभी नहीं।" कुछ समय के बाद उन्होंने अध्यापक को बताया कि मुझे वह पाठ ठीक तरह से याद हो गया है। कुछ अचम्भे के साथ अध्यापक ने उनसे पूछा कि एक छोटी पंक्ति याद करने में तुम्हें इतना अधिक समय क्यों लगा। उन्होने नम्रतापूर्वक जवाब दिया कि तब तक मैं अपने जीवन के साधारण क्रम में उसे लागू करना नहीं सीख पाया था।

पाश्चात्य विचार के चटकीले रंगों में रंगी होने के कारण हमारी वर्तमान शिक्षा का झुकाव जिन्दगी की जरूरतों को बेइन्तहा बढ़ाने की तरफ है। जिन्दगी भर लोग अपने विचार और प्रयास के पूरे बल से उनको हासिल करने में लगे रहते हैं। वही उनकी जिन्दगी का खास मकसद हो जाता है। हार और असफलता का उन पर दुःखदायी प्रभाव पड़ता है और उनका मिजाज बिगड़ जाता है। गुस्से का असली कारण सामान्यतः अपने खुद की हठीली प्रकृति है। उसके प्रभाव से बना जिद्दी स्वभाव विवेक को ढक लेता है। सही और गलत का भेद मिट जाने से वह अपने ही मत पर अड़ा रहता है और दूसरे के दृष्टिकोण को कोई स्थान नहीं देता। निस्सन्देह अध्यात्म के मार्ग में यह एक भारी रुकावट है। अध्यात्म मार्ग के पथिक को मन और चेतना में यथासम्भव हलका होना चाहिए। उसे तो अपने लक्ष्य की भावना के भार तक से मुक्त रहना चाहिए। यही वास्तव में दृढ़ संकल्प का असली राज है जो मैं आज आपसे बता रहा हूँ। ऐसी दशा में, जो भी विचार अन्दर आकर बैठ जाता है, प्रतिफलित होता है। इस अवस्था में स्थायित्व ऊँचे दरजे की उपलब्धि है।

❀ ❀ ❀ ❀

मेरी कामना है कि आप सदा प्रसन्न रहें पर प्रसन्नता अपने कर्तव्य के यथोचित पालन में है। गीता इस पर इतना अधिक बल देती है। वास्तव में अध्यात्म का यही प्राण है। जिनसे

हमारा सम्बन्ध है उन सबके प्रति अपने कर्तव्य के मार्ग में जो भी कठिनाइयाँ और दुश्चिन्तायें मिलती जायें हमें उनका निर्भीकता के साथ सामना करने के लिए तैयार रहना चाहिए। अपने उत्तरोत्तर जन्मों की तकलीफों की तुलना में यह महज छोटा सा त्याग है। मैं सिर्फ एक चीज लिए आग्रह करता हूँ— वह है संसार और ईश्वर के प्रति अपने कर्तव्य का निर्वाह और सिर्फ इतना ही वर्तमान जन्म में मुक्ति पाने के लिए सब कुछ और पर्याप्त है।

❀ ❀ ❀ ❀

दूसरों के तानों और झिड़कियों को शान्तिपूर्वक सह कर और हमीं गलती पर होंगे यह अहसास लाकर, हमें सहिष्णुता की आदत डालनी चाहिए। उस महान् ध्येय की प्रप्ति के लिए यह कोई बड़ा त्याग नहीं है। यदि मेरी बात आपको जँचती हो तो कृपया उस पर अमल करने की कोशिश करिए। इससे आपको अधिक शान्ति मिलेगी। यदि आप इसके लिए अपने को अक्षम पायें तो विनम्र हृदय से प्रार्थना में लग जाइये। यह करिये और देखिये कि क्रोध को आप वश में ला पाते हैं या नहीं।

❀ ❀ ❀ ❀

लोग किसी काम में उसके प्रति आकर्षण के कारण लग जाते हैं। कुछ वैसा ही आकर्षण आदमी को ईश्वरत्व की ओर खींचता है। इस प्रकार, पूजा, भक्ति, तपस्या, शान्ति और

परमानन्द—इनके आकर्षण होते हैं। वे असली चीज के लिए नहीं, बल्कि महज उस आकर्षण के लिए, प्रयास में लगते हैं। पर जब तक ऐसा केवल आकर्षण के लिए होता है, तब तक यह सिर्फ मनबहलाव भर है और इसलिए असली उद्देश्य से एकदम दूर है। वस्तुतः आत्मानुभव में न कोई आकर्षण है, न आनन्द है, उसमें शान्ति, परमानन्द या आत्मानुभव का बोध तक नहीं होता। यह एक स्थिर अवस्था है—अविच्छिन्न और अपरिवर्तमान।

❀ ❀ ❀ ❀

संसार स्वप्न की तरह मिथ्या कहा जाता है और विद्वान गुरु उस तरह सोचने के लिए लोगों को प्रेरित करते हैं। पर जब तक आदमी सपने में रहता है, वह उसके लिए मिथ्या नहीं होता। उसी तरह जब तक हम संसार के इस स्वप्न लोक में रहते हैं, यह हमें कभी मिथ्या नहीं लग सकता। सपना हमें तभी झूठा लगता है जब हम जग जाते हैं, या दूसरे शब्दों में हम उससे दूर हो जाते हैं। उसी तरह हमें संसार केवल तभी मिथ्या लग सकता है जब हम भौतिक चेतना के क्षेत्र से परे चले जाते हैं। पर यह महज सोचने, कल्पना करने या "संसार मिथ्या है", "सब कुछ माया या भ्रम है", इस तरह के शब्दों को बराबर दुहराते रहने से प्राप्त नहीं हो सकता। उस दशा को विकसित करने के लिए समुचित साधन अपेक्षित हैं।

❀ ❀ ❀ ❀

किसी विशेष बिन्दु या क्षेत्र में अभ्यासी द्वारा प्राप्त दशा कभी-कभी (उसके) ऊपर के क्षेत्रों में भी गुरुदेव के अनुग्रह से प्रतिबिम्बित होती है, जिसका नतीजा यह होता है कि वे किसी हद तक मानों जागृत मालूम होने लगते हैं। उस हालत में, समझने के लिए अभ्यासी की वहां तक पहुँच मानी जा सकती है। इस तरह, पहुँच दो प्रकार की होती हैं। मेरे गुरुदेव के उर्दू शब्दों में एक है 'अक्सी' या प्रतिबिम्बित और दूसरी 'कसबी' या अर्जित।

❀ ❀ ❀ ❀

मेरे अनुभव में यह भी आया है कि प्रशिक्षण के पूरा होने के पहले भी ईश्वर अपने ऊपर कुछ जिम्मेदारी ले लेता है। पर जब वह अभ्यासी का पूरा भार अपने ऊपर ले लेता है, तो गुरु का काम करीब करीब समाप्त हो जाता है, गो कि कुदरत के काम को आसान करने के लिए, जरूरत पड़ने पर, उन्हें सफाई करती रहनी पड़ती है। मेरी अतिचेतना मुझ पर यह जाहिर करती है कि जब अभ्यासी केन्द्रीय प्रदेश में प्रविष्ट हो जाता है तो ईश्वर उसका भार ले लेते हैं और यह सभी मामलों में लागू होता है।

पर ईश्वर से आवेशित होने पर भी मानवीयता एकदम गायब नहीं हो जाती बल्कि फिर भी कायम रहती है गो कि वह केवल साधारण स्तर की होती है। इसलिए जब कोई

ईश्वर से बहुत नजदीकी पा लेता है तब भी उसमें मानवीय प्रेरणा बनी रहती है।

❀ ❀ ❀ ❀

जो शक्ति हमें ऊपर से मिलती है, आज्ञा-चक्र उसका वितरक है। जो लोग आज्ञा-चक्र पर ध्यान करते हैं उन्हें अस्थिर दशा का अनुभव होता है, सुस्थिर दशा का नहीं। मुझे उस तरह के ध्यान का कोई अनुभव नहीं है पर मैं उसे इसी तरह का समझता हूँ। 'आज्ञा' की अपेक्षा 'सहस्रार' पर ध्यान ज्यादा अच्छा है। हमारी अन्तिम पहुँच तब होती है जब (शरीर-) संरचना का विसर्जन होता है और पूर्ण निषेध की अवस्था में हमें अपना कहीं भी भान नहीं रहता। एक उर्दू शायर निम्नांकित शेर में इसी हालत का हवाला देता है :—

हम वहाँ हैं जहाँ से हमको भी
कुछ हमारी खबर नहीं आती।"

जब काम-धाम की गरज से हम थोड़ा नीचे खिसकते हैं तो हर कण में हमें अपनी ही (ईश्वरीय) खुशबू का अनुभव होता है। जब तक कि उस मंजिल की दशा की एक क्षणिक झलक भी न मिले, तब तक उस दशा को समझ पाना बहुत कठिन है।

❀ ❀ ❀ ❀

शास्त्रों में परमानन्द का वर्णन पढ़ कर अभ्यासी केवल उसी को ध्यान में रख कर उसे बड़ी प्रशंसा की दृष्टि से देखने

लगते हैं। निस्सन्देह यह बहुत शान्तिदायक है, पर यही कदापि अन्त नहीं है। जिस चीज की मैं सारे अभ्यासियों के लिए कामना करता हूँ वह यह है कि वे परमानन्द और निरानन्द दोनों से मुक्त हों। मैं इसी के लिए प्रार्थना करता हूँ। यदि कोई मेरी प्राणाहुति के प्रभाव को ध्यान से देखे तो उसे परमानन्द के मोहक प्रभाव का—यद्यपि बहुत थोड़ा—पता लगेगा, क्योंकि मैं ईश्वरानुभव का सार उनके अन्दर आरोपित करना चाहता हूँ, बिना इस बात की परवाह किये कि यह उन्हें रुचिकर है या नहीं। हाँ, कभी कभी मैं हलके आनन्द की भी एक खुराक दे दिया करता हूँ ताकि उन्हें ऊब न लगे।

इस सिलसिले में मैं एक घटना बयान करूँ। एक बार, उस वक्त की अपनी रूहानी हालत के सिलसिले में, मैंने अपने गुरुदेव से पूछा, "क्या यही वह परमानन्द की अवस्था है जिसकी इतनी अधिक चर्चा होती है और जिसके लिए आपने अनुग्रहपूर्वक इतने दिनों तक मशक्कत की ?" उन्होंने मुस्कराते हुए जवाब दिया, "क्या होगा अगर जिस हालत में तुम अभी हो, चाहे वह बेस्वाद हो, तुमसे वापस ले ली जाय ?" मैंने तुरन्त जवाब दिया कि उस हालत के वापस लिये जाने के मुकाबले, मैं मर जाना ज्यादा पसंद करूँगा। अपनी वर्तमान अवस्था प्राप्त करने के पूर्व, मैं जब मग्न होता था परमानन्द की दशा में, जिसे मैं पार कर चुका था, लौट जाया करता था।

पर अब इस निरानन्द—निस्वाद—की दशा से मैं एक क्षण के लिए भी परमानन्द की दशा में उतरना पसन्द नहीं करता।

मेरा बयान वे ही लोग कबूल करेंगे जो धार्मिक साहित्य में निष्णात हैं या वे जो पहले से ही उस निरानन्द की अवस्था में हैं। पर यदि कोई विवेचन करेगा, तो इस निष्कर्ष पर पहुँचेगा कि यह वह उच्चतर स्थिति वाला मन है जो परिष्कृत ढंग से अपने ही मार्ग से चलना चाहता है। आत्मा में रुचि अरुचि का प्रश्न नहीं उठता। वह जैसी है वैसी है। प्रगति की उच्चतम अवस्था में वैयक्तिक मन उच्चतर कार्य का साधन बन जाता है।

❀ ❀ ❀ ❀

मैं आज्ञा-चक्र को ध्यान का बिन्दु इसलिए नहीं बनाता कि उसमें पिंड प्रदेश की शक्ति आती है और वह उसे निम्न प्रदेशों में वितरित करता है। यदि कोई इस बिन्दु पर ध्यान करे तो उसे ध्यान में बाधा देती हुई झिलमिलाहट का अनुभव होगा। यदि मैं कहूँ कि माणिक के रंग जैसे बिन्दुओं का (ध्यान में) आना बहुत ऊँची विशुद्ध दशा का ही निशान है तो मैं अपनी ही तारीफ करूँगा, पर सच्ची बात कहनी ही पड़ती है। मुझे पता नहीं कि महात्मा बुद्ध का यही आशय था या और कुछ। तिब्बत के बौद्ध "ॐ मणि पद्मे हुम्" का जप करते हैं। महात्मा बुद्ध का एक चमत्कार है कि वे कमल की पँखुड़ियों से

विभूषित एक स्थान पर बैठे रहे और एक के बाद एक बुद्ध आकाश में उड़ते हुए दिखलाई पड़े। मैं मानता हूँ कि इस तरह बुद्ध की विशुद्धता प्रदर्शित की गई है।

❀ ❀ ❀ ❀

आज्ञा-चक्र या थोड़ा उसके ऊपर प्राणाहुति देने पर अभ्यासी को हलकेपन का अनुभव होता है। चित्तसरोवर के काफी ऊपर के बिन्दु पर प्राणाहुति देने पर, यदि वह शक्ति सहन नहीं कर पाता तो प्रकाश का नहीं बल्कि दबाव का, अनुभव होगा। हम उस देश की सन्तान हैं जहाँ सूर्य सदा चमकता है, जहाँ अंधकार का कोई स्थान नहीं है और प्रकाश बिदाई देता है। हमारे योगी धुयें से अग्नि का अनुमान नहीं लगाते। वे सीधे ही उस तत्त्व का दर्शन करते हैं। जब सच्ची सहज अवस्था प्राप्त हो जाती है तो एक एक आत्मा की असलियत और अपने खुद में प्रकृति के रुझान को जाना जा सकता है। थोड़ी एकाग्रता से यह सब उद्घाटित हो जायेगा।

❀ ❀ ❀ ❀

यदि मन अपने उपशामक प्रभाव में संसक्त रहता है, तो इसका मतलब है कि वह अपना खुद का खेल अपने ढंग से खेल रहा है। इसी औजार से सारी सिद्धियाँ और चमत्कार प्रदर्शित किये जाते हैं। जब तक कोई इसका औजार बना रहता है, तब तक वह अपने को इससे ढका हुआ पाता है। ईश्वरीय

आज्ञा और आदेश केवल उनके पास आते हैं जो मन के सम्मोहन के अधीन नहीं होते।

हृदय-प्रदेश शिखर (चोटी) तक है। उसके बाद मन-प्रदेश है जो अनुकपाल-बिन्दु तक जाता है। जैसा कि मैंने "राजयोग का दिव्य दर्शन" में संकेत किया है, उसमें एक अतिचेतना भी रहती है पर वह बहुत सक्रिय नहीं होती।

ब्रह्माण्ड आज्ञा चक्र से, जहाँ पिण्ड प्रदेश को पार करके पहुँचा जाता है, शुरू होता है। इस प्रकार चित्तसरोवर ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत आता है और सरस्वती का बिन्दु भी। मैंने "राजयोग का दिव्य-दर्शन" (तृतीय संस्करण, पृष्ठ २९) में बताया है कि हृदय प्रदेश पूरे सिर से पैर तक फैला है और समूची सृष्टि इसी दायरे में, अर्थात् शिखर तक, विद्यमान है।

मेरा अनुभव मुझे यह भेद बताता है कि परब्रह्माण्डमंडल के आगे, तीन और प्रदेश हैं जिनके नाम मैंने, उनकी दशा के अनुसार, फ़ारसी में अंकित किये हैं। उसके बाद, अनगिनत बिन्दु हैं जिनकी अपनी अलग अलग दशा है। मैं साधारणतः इन बिन्दुओं को एक-एक करके लेता हूँ।

ये सब बिन्दु सहस्रार (शिखर) में हैं क्योंकि शिखर के बाद हृत्प्रदेश खत्म हो जाता है और मनःप्रदेश शुरू होता है। एक

और प्रकार की अतिचेतन अवस्था भी है जिसका मैंने "राज-योग का दिव्य दर्शन" में विवेचन नहीं किया है क्योंकि यह ईश्वर के लिये उपकरण का काम देता है। अन्य सारी अति-चेतन अवस्थायें, जो साधारणतया कलिकावस्था में दिखती हैं, विकसित की जाने पर पूरे खिले हुये फूल में बदल जाती हैं। परन्तु इस अतिचेतन अवस्था की स्थिति उलटी हुई रहती है और इसकी पँखुड़िया नीचे की ओर मुड़ी होती हैं। जब इसमें गुजरा हुआ अभ्यासी केन्द्रीय प्रदेश में पहुँचता है, तब यह अतिचेतन अवस्था दिव्य शक्तियाँ प्राप्त करने में उसकी मदद करती हैं। पर उसको यह प्रदान करना पूरी तरह ईश्वर की मरजी पर है। उसको बलपूर्वक लेना अभ्यासी के वश के बिलकुल बाहर है। जब कोई अभ्यासी केन्द्रीय प्रदेश में गुरु के प्रति पूर्ण भक्ति और श्रद्धा के साथ प्रवेश करता है तो वह स्वतः जागृत होने लगती है। पर वह केवल अनुभव का विषय है।

केन्द्र स्वयं ईश्वर है: मूल कोश और अन्य सारे कोश उसकी सृष्टि हैं। यदि कोई केन्द्र पर ध्यान लगाना चाहता है तो उसके प्रयास सफल नहीं होंगे, भले ही वह अपनी कल्पना में ध्यान जमाने के लिए केन्द्र को अपनी निगाह के अन्दर ले ले। उसके लिए एकमात्र तरीका वही होगा जिसका इशारा मैंने "अनन्त की ओर" नाम की पुस्तक में दिया है। पर मैं हर किसी को ऐसी कोशिश करने को मना करता हूँ। मैंने इसको, गुरुदेव

के प्रति प्रार्थना करके, दो बार केवल दो या तीन सेकण्ड प्रत्येक बार, कोशिश की थी। वहाँ, किनारे के घेरे पर प्रचण्ड शक्ति होने के कारण, मैंने स्वयं अपने हृदय पर जबर्दस्त रोक लगा दी थी और साथ ही साथ गुरुदेव का शक्तिशाली हाथ भी वहाँ मौजूद था। फिर भी, मैं उसकी झलक ले सका, पर उस पर ध्यान बिलकुल न लगा सका क्योंकि दिल पर दबाव इतना ज्यादा था कि सहा नहीं जा रहा था। इसके अतिरिक्त, उस घेरे के पास फटकना तक बहुत कठिन है क्योंकि वहाँ से पीछे फेंकने वाला एक जबर्दस्त धक्का लगता है। पर गुरुदेव ने ऐसा करने पर मुझे बहुत डाँटा और आइन्दा इसे दोहराने के विरुद्ध चेतावनी दी।

❀ ❀ ❀ ❀

अब सवाल यह उठता है कि मैं इस मामले में इतना द्रवित हुआ ही क्यों—जो स्पष्टतः आध्यात्मिक अनुशासन के घोषित नियमों के विरुद्ध हो सकता है। इस सिलसिले में मैं अपने जीवन की एक पुरानी घटना सुना दूं। करीब तीस साल पहले मेरा ज्येष्ठ पुत्र, जो उस समय इकलौता था, अपने नवें साल में मर गया। मुझे उस समय उतना भी मलाल न हुआ जितना एक पालतू तोते के मरने पर किसी को होता है। उस समय यह बात अपने प्रशिक्षकों में से एक को मैंने इसी तरह बताई थी। यह बात मेरे अभ्यास के आठवें या नवें वर्ष की है। पर अब, चालीस वर्षों के अभ्यास के बाद मैं उसी तरह की घटना से

बहुत अधिक द्रवित हो जाता हूँ। यह विचित्र विषमता क्यों है ? मेरे बुद्धिमान और विद्वान् साथी इसके कारण का पता लगायें और उसे सुलझायें। क्या यह नहीं माना जा सकता कि मेरी उस समय की दशा आज की दशा से ऊँची और श्रेष्ठ थी ? अपने हिसाब से उस समय की अपेक्षा में आज अधिक समुन्नत और गुण-सम्पन्न हूँ। अभी मैं उस रहस्य को अपने तक ही रखे हुए हूँ। हाँ इशारे के लिए मैं इतना कह दूँ कि मानवता और ईश्वरत्व दोनों को साथ साथ चलना चाहिए। पूर्णता की मेरी धारणा यही है।

❀ ❀ ❀ ❀

आपने अपने पत्र में पांच प्रकार की प्रतिमाओं के बारे में उनमें से प्रत्येक की परिभाषा करते हुए, लिखा है। मैं अपने गुरुदेव द्वारा बताई गई एक और मूर्तिपूजा के बारे में लिख रहा हूं। उन्होंने कहा था कि यदि आदमी अपनी आदतों का गुलाम है, तो वह भी मूर्तिपूजक है। मैं इसके भी आगे बढ़ कर कहता हूँ कि यदि हम कोई चीज कल्पित कर लेते है और उसका अस्तित्व नहीं होता तो वह भी मूर्तिपूजा है। यदि आदमी अपनी बीबी और बच्चों आदि को प्यार करता है, तो भी वह मूर्तिपूजक है। पार्थिव चीजों से कोई भी लगाव मूर्तिपूजा है। यह पूरी तरह से कैसे खत्म किया जाय ? यह तभी सम्भव है जब विचार (यानी मन) इस तरह का कोई संस्कार न ग्रहण करे। अगर वह आये भी, तो स्वतः वापस फेंक दिया जाय।

पर ऐसा लम्बी यात्रा के बाद होता है। हमें मूर्त चीजों की पूजा से बचना चाहिए ताकि हम ऊपर उठें और "उसे" हस्तगत कर लें। ऐसे लोग हैं जिन्हें आत्मानुभव के लिए कुछ व्यावहारिक इशारा दिया जाय, फिर भी वह ठोस तरह की मूर्तिपूजा छोड़ेंगे नहीं। मेरे साथ के अभ्यासियों की कुछ मिसालें हैं जिनके सामने मैंने असली तरह से, पर महज थोड़ी देर के लिए, आत्म-साक्षात्कार की अवस्था प्रदर्शित की। उन्हें उसका एहसास हुआ और उसे सराहा भी बहुत, पर वे अपनी मूर्तियाँ छोड़ने को तैयार नहीं हैं क्योंकि वे उनके आदी हो गये हैं। और उनकी समझ बिलकुल मोटी हो गई है। उनकी विवेचन-शक्ति एकदम समाप्त हो गई है और यही हमारे अधःपतन का कारण है। जब विवेचन-शक्ति गायब हो जाती है, तो भय का आगमन होता है। वे मूर्तिपूजा इसलिए नहीं छोड़ते कि उनके पूर्वज बराबर उसे करते रहे हैं। यह एक कारण है। दूसरा यह है कि वे सोचते हैं कि यदि वे उसे छोड़ देंगे तो उनके ऊपर कोई विपत्ति आ जायेगी। यह हमारी दुःखभरी कहानी है।

❀ ❀ ❀ ❀

यह मेरा विचित्र अनुभव है कि आलस्य कैंसर पैदा करता है। अब मैं इस बिन्दु (निष्कर्ष) पर आ गया हूँ कि आलस्य निज के सामने समर्पण है। दूसरे शब्दों में आलसी आदमी निज के सामने आत्म-समर्पण कर देता है जो आध्यात्मिक विकास

के लिए आत्म-घातक है। आलसी तो मैं भी बहुत हूं, पर यह महज घर-गृहस्थी के कामों में है।

❀ ❀ ❀ ❀

विलयन निःसन्देह होता है। पर ऐसी हालत में असलियत में डूब जाने के बाद आदमी दूसरी तरफ यानी दुनिया से भी जुड़ा हुआ महसूस करता है। मानव-जाति के लिए प्रकृति की यही योजना है क्योंकि इसके बिना मानव-जाति जीवित नहीं बच सकती। साथ ही साथ यह आवश्यक भी है क्योंकि मनुष्य के रूप में सर्वप्रथम हमें तब तक जीवित रहना है जब तक हम सदा के लिए आँखें न बन्द कर लें। यह प्रकृति का रहस्य है। मैंने अभी बताया है कि ये चिन्तायें केवल सतह पर रहती हैं। जब आदमी का खयाल उन पर जाता है, वे उग्र हो जाती हैं क्योंकि उनमें शक्ति आ जाती है। यदि ऐसा लगने लगे, तो मन से स्वाभाविक बल द्वारा वह विचार बाहर निकाल दीजिए।

❀ ❀ ❀ ❀

सहज मार्ग की अभ्यास-पद्धति बहुत ऊँचे स्तर की है। यह बिलकुल जड़ पर आघात करती है और केन्द्र से परिधि की ओर काम करती है। यह अपकेन्द्रीय प्रक्रिया है और गहरा और स्थाई प्रभाव पैदा करती है। इस तरह के भी गुरु हैं जो एक भिन्न क्रम को अपनाते हैं जिसमें वे स्थूल चेतना की केवल ऊपरी तहों को स्पर्श करते हैं—अभ्यासी की इन्द्रियों को अशक्त करने और इस तरह मूर्छा की अवस्था उत्पन्न करने के लिए।

इस तरह का उत्पन्न प्रभाव अभ्यासी को उस समय तो सुखद लगता है पर अन्ततः मन को कुण्ठित और बुद्धि को नष्ट करता है। सहजमार्ग-पद्धति के अन्तर्गत आप अभ्यासी की बुद्धि को अद्भुत रूप से बढ़ती हुई पायेंगे यहाँ तक कि वह दिव्य बुद्धि में रूपान्तरित हो जाती है। यदि कोई पर्याप्त रूप से संवेदनशील हो तो वह अपने अन्दर क्रमिक रूपान्तरण को अनुभव कर सकता है।

❀ ❀ ❀ ❀

"सृष्टि-काल में कण पहले से विद्यमान रहते हैं"—इसमें 'कण' शब्द पदार्थ के कण, इस सामान्य अर्थ में नहीं लिया गया है क्योंकि बाद को सृष्टि होने के कारण पदार्थ अपने रूप में उस समय विद्यमान नहीं था। जो उस समय था उसे 'ऊर्जा' कहना ज्यादा ठीक होगा; और यहाँ काम में लिया शब्द ऊर्जा के कणों की ओर इशारा करता है, जो बाद में क्षोभ यानी प्राथमिक हलचल की क्रिया से पदार्थ में परिणत हुये।

❀ ❀ ❀ ❀

"ब्रह्म के पास मन नहीं होता और असलियत जिस तरह विकसित हुई है उससे संपर्क में आने के लिए उसे मानव मन की जरूरत पड़ती है।" इस सिलसिले में मैं यह भी बता दूँ कि यदि ईश्वर (ब्रह्म) में मन होना मान लिया जाय तब मन का व्यापार भी वहाँ होता होगा। तब उन्हें भी अपने खुद के कामों

के प्रभाव के अधीन होना पड़ेगा। पर यह सब लोग मानते हैं कि 'वह' इस तरह के सारे प्रभावों से मुक्त है। इसका मतलब हुआ कि वहाँ मन के व्यापार नहीं होते। इसका अन्त में यही अर्थ है कि 'उसमें' मन नहीं होता। मैं समझता हूँ कि विचारों की यह उलझन ईश्वर विषयक अनेक धारणाओं के कारण होती है। पर इस धारणा के ईश्वर की मैं जब बात करता हूँ तब मेरा आशय सब चीजों से परे–मन की कौन कहे, शक्ति, क्रियाशीलता और चेतना से भी परे—अपनी परा-वस्था में स्थित ब्रह्म से है। अब जिस मानवीय मन के माध्यम से 'वह' क्रियाशील होता है, उसके पूरी तरह नकारात्मक होने से उसमें अपनी खुद की कोई कार्यवृत्ति नहीं होती और उसके माध्यम से जो भी कार्यान्वित होता है ईश्वरीय होता है। इस तरह वह ईश्वर के उपकरण का काम देता है।

❀ ❀ ❀ ❀

"पार्थिव कणों का ऊर्जा में रूपान्तरण हो सकता है।" यह मत इतना विवादग्रस्त नहीं है क्योंकि अति सूक्ष्म अवस्था में पदार्थ ऊर्जा में बदल जाता है। या दूसरे शब्दों में पदार्थ ऊर्जा की केवल अधिक स्थूल अवस्था है। यह एक वैज्ञानिक नियम है और जहां तक मैं समझता हूँ आधुनिक विज्ञान भी इसे स्वीकार करता है। यह हमारी प्राणाहुति पद्धति का बिलकुल प्रारंभिक आधार है। आपने स्वयं इसे बहुत सुन्दर

शब्दों में यों व्यक्त किया है : "प्राणाहुति पदार्थ को ऊर्जा में और ऊर्जा को मूल तत्त्व में बदलने का काम करती है।"

❀ ❀ ❀ ❀

'आनन्दमय', चरम अवस्था—जिसे शून्य कह कर बखाना गया है– न होकर एक कोश है । आनन्दमय कोश पाँच कोशों में से एक है। शास्त्रों के अनुसार भी ये कोश निःसन्देह प्रतिबंध हैं। स्पष्टतः प्रतिबन्ध रूप में आनन्दमय (कोश) चरमावस्था नहीं माना जा सकता जो वस्तुतः हर चीज के, परमानन्द तक के, परे है । इसकी मैं और अधिक चर्चा नहीं कर रहा हूँ क्योंकि आनन्दमय कोश के अनावृत्त होने के बाद आपके खुद के अनुभव इस बिन्दु पर काफी साक्ष्य देते हैं।

❀ ❀ ❀ ❀

"मनुष्य के रूप में भी सीधे केन्द्र के सम्पर्क में कोई रह सकता है बशर्ते कि यह भौतिक संरचना उच्चतम चेतना या खुद केन्द्र के द्वारा निर्मल कर दिया जाय।" मैं समझता हूँ कि अन्यत्र प्रकट किये गये मेरे विचारों को लेकर यह बात उभरती है। वहीं उच्चतम अवस्था प्राप्त करने की विधि भी बताई गयी है। निःसन्देह मेरे गुरुदेव के शिक्षण की विचित्र विशिष्टताओं में से यह एक है । इस परम उदात्त अवस्था को प्राप्त करने के लिए निस्सन्देह अत्यधिक पवित्रता आवश्यक है। पर इसके लिए सक्षमता ईश्वरीय वरदान है।

जहाँ तक इस पुस्तक में व्याख्यायित तत्त्व-मीमासा का सवाल है, मैं बता दूं कि चूंकि इस विषय को समझाने का मेरा कोई पक्का इरादा नहीं था, इसलिए इस किताब में उसका सिलसिलेवार विवेचन नहीं है। इसमें जो कुछ भी है वह व्याख्यायित प्रसंगों से सीधा संबन्ध रखने वाले बिखरे हुये हवालों के रूप में है।

❀ ❀ ❀ ❀

मैंने "राजयोग का दिव्य दर्शन" में अपने गुरुदेव की अद्भुत खोज—कि स्थूल शरीर रहते आदमी केन्द्रीय प्रदेश में पहुँच सकता है—के बारे में बताया है। जब कोई केन्द्रीय प्रदेश में पहुँच जाता है, तब एक बन्धन कायम रखा जाता है ताकि नीचे के प्रदेशों से भी उसका सम्बन्ध बना रहे। अगर यह बन्धन न कायम रखा जाय, तो आत्मा परम शान्ति में छलांग लगा लेगी और जीवन समाप्त हो जायेगा। इसलिए यह आवश्यक है कि बीच बीच में नीचे के प्रदेशों की हवा का स्पर्श मिलता रहे। संसार के सर्वोच्च संत की भी—यदि वह किसी तरह इस केन्द्रीय प्रदेश में पहुँच जाय—यही दशा होगी।

—

यह तो है कि नकारात्मकता की पराकाष्ठा में झटका बहुत हलके से महसूस होता है। हर मंजिल पर हमेशा प्रगति की गुंजाइश रहती है। जब हर चीज ठीक रहती है और

ईश्वरीय शक्ति से कोई आवेशित हो जाता है तो केन्द्रीय प्रदेश में तैरना शुरू हो जाता है—पर केवल प्रकाश के वृत्तों को पार करने के बाद। तैरना शुरू करने में बहुत उच्च शक्ति की की सहायता की जरूरत पड़ती है।

❀ ❀ ❀ ❀

मेरे गुरुदेव की महान शिक्षाओं के अनुसार, शरीर के प्रत्येक रोमकूप का अपना ऊर्जा-केन्द्र होता है और वह स्वयं एक महाद्वीप है। अपने ग्रह-संस्थान के सहित ब्रह्माण्ड में जो कुछ है सब वहाँ भी मिलता है। उन सब को अपनी पूर्ण जागृतावस्था में आना है। मैं दिल से प्रार्थना करता हूँ कि मेरे सारे साथी उस मंजिल तक पहुँचें और ईश्वर मुझे उनकी वैसी सेवा करने का अवसर दें। मेरे गुरुदेव के लिए, और केवल उन्हीं के लिए, यह क्षण भर का काम है। पर एक झलक में वैसी शक्ति को हस्तगत करने के लिए कौन तैयार है? मैं निरन्तर प्रयास कर रहा हूँ कि मेरे साथियों में इस ईश्वरीय शक्ति को धारण करने की क्षमता आ जाय। इसलिए हम धीरे धीरे आगे बढ़ने की प्रक्रिया का अनुसरण करते हैं।

❀ ❀ ❀ ❀

अपने खुद के लिए मैं कह सकता हूँ, कि मुझे फ़ैज का कतई एहसास नहीं होता गो कि वह बराबर मौजूद रहता है। मैं उसे सिर्फ तब महसूस करता हूँ जब मैं किसी माकूल वजह से द्वैतता ग्रहण करता हूँ—और यह अधिकतर तब होता है जब

मुझे दिव्यता से कोई चीज उतरती हुई महसूस होती है। यह एक विचित्र अवस्था है जिसे बताने के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं।

❀ ❀ ❀ ❀

शक्ति के हटा लेने की अनुभूति नकारात्मकता से कुछ मिलती जुलती होती है। में शक्ति तक की कामना नहीं करता, मैं उसकी केवल अन्तिम अवस्था पाना चाहता हूँ। उस दशा में, शक्ति की जब जरूरत पड़ती है, वह हाजिर मिलती है।

स्वयं मैं इस मत का हूँ कि यदि सांसारिक जीवन के निर्वाह के लिए आवश्यक सभी चीजों से हमें वंचित कर दिया जाय, और उसकी जगह प्राप्त करने लायक आन्तरिक जीवन हमें प्रदान कर दिया जाय तो हम किसी तरह घाटे में नहीं रहते।

मैं समझता हूँ कि इस मार्ग में बाहरी परिस्थितियों को बदलने का सवाल ठीक नहीं बैठता। होना तो यह चाहिये कि ईश्वर की मरजी के सामने आत्मसमर्पण करने के अभ्यास की दृष्टि से अभ्यासी स्वयं अपने को परिस्थितियों के अनुरूप बना ले। ईश्वरीय इच्छा सर्वोपरि है, परिस्थितियाँ उसका परिणाम हैं। उन्हें ईश्वर के प्रसाद के रूप में ग्रहण करना हमें सीखना है। बेशक मैं मानता हूँ कि सामान्य जन के लिये यह आसान काम नहीं है, इसलिये प्राकृतिक प्रतिबंध उसे

बहुत दुःखदायी लगते हैं । पर परिस्थितियों को लेकर जो अक्सर हमारे बस के बाहर होती हैं, चिंता करने के बजाय अपने खुद के स्थूल स्वरूप को सुधारने के प्रयास में लगना ज्यादा अच्छा है ।

मगर मुश्किल यह है कि जो आध्यात्मिक साधना के लिये (ऐसा कहते हुए) आते हैं, उनमें से अधिकांश सांसारिक उद्देश्यों से प्रेरित होते हैं और उनकी पूर्ति वे अपनी पसंद के अनुसार चाहते हैं। यदि वह उन्हें नहीं प्राप्त होती तो वे छोड़ कर चल देते हैं। और यदि हो भी जाती है तो वे जमे नहीं रहते क्योंकि उनका मतलब तो पूरा हो गया। इस तरह के कई मामले हुए हैं। आध्यात्मिक प्रशिक्षण के सम्बन्ध में मेरे गुरुदेव के तरीके सांसारिकता के स्पर्श से एकदम मुक्त हैं। मुझे पता है कि कुछ फ़कीर ऐसा प्रलोभन देते हैं और किसी हद तक वे अक्सर सफल भी होते हैं। पर यह निश्चित है कि ऐसा करने के लिये उन्हें सही रास्ते से हटकर चलना पड़ता है और अनाध्यात्मिक तरीके अपनाने पड़ते हैं जो मेरे लिए बहुत कड़वी गोली निगलने जैसा होगा। मैं अपने गुरुदेव द्वारा निर्धारित आदेश का कड़ाई के साथ पालन करता हूँ और किसी भी मूल्य पर अनाध्यात्मिक तरीके अपनाना नहीं चाहूँगा।

❀ ❀ ❀ ❀

निःसन्देह हर व्यक्ति को जो मेरे पास आता है उस समय जितना हो सके रूपान्तरित करने की मैं कोशिश करता हूँ क्योंकि यह मैं अपना फर्ज समझता हूँ। पर उस व्यक्ति का भी तो कोई फर्ज बनता है। प्राणाहुति को काम करने देना उस पर निर्भर करता है। जहाँ इसकी कमी होती है तो आदमी, कुछ समय बाद निश्चयतः बीच में से चला जायेगा, भले ही वह उस वक्त अभ्यास करने के लिये राजी हो जाय।

मेरी कठिनाइयाँ कई तरह की हैं। हर चीज मुझे अपने ऊपर लेनी पड़ती है जैसे चर्चा करना और कायल करना, अभिलाषा और स्थिरता पैदा करना, ढालना और रूपान्तरित करना और अन्त में अपने मार्ग पर दृढ़ रखना। इसमें मुझे कोई गुरेज नहीं बशर्ते कि दूसरे पक्ष से पूरा सहयोग प्राप्त हो रहा हो। पर यह बहुत अफसोस की बात है कि कुछ मामलों में सहयोग तक नहीं मिलता। जिसकी उन्हें चाह होती है वह सिर्फ बाहरी और दुनियावी है। हमारा मार्ग केवल मुक्ति और उससे आगे की प्राप्ति के लिये बना है और इस तरह नीचे दरजे के लक्ष्यों बहुत दूर है। उसी को मैं हर एक को अपने प्रथम सम्पर्क से ही प्रदान करता हूँ। यदि वह इसके लिए उत्कण्ठित है तो इसे पक कर मुकम्मिल होने में समय लगता है। जो मेरे पास बिना सच्ची उत्कण्ठा के आते हैं उनमें इतना

धैर्य नहीं रहता कि जड़ें गहरी जमने और धीरे-धीरे अपना परिणाम प्रदर्शित करने तक प्रतीक्षा कर सकें। मेरी समझ में नहीं आता कि ऐसे मामलों में मैं करूँ क्या सिवाय इसके कि मैं हर चीज उनके अंदर जबरदस्ती डालने के लिए अपने को तैयार कर लूँ। पर यह खतरे से भरी प्रक्रिया हो सकती है।

❀ ❀ ❀ ❀

देश के इस भाग में एक संगठन है जो आध्यात्मिकता प्रदान करने का दावा करता है। इसके अनुयायियों की संख्या काफी बड़ी है और इसमें शामिल होने वाले लोग इसे शायद ही छोड़ते हैं, यद्यपि मेरी जानकारी के अनुसार कुछ लोग इससे बहुत विरक्त और विमुख हैं। मैं देखता हूँ कि वे अभ्यासियों को अपने से बँधे रखने के लिए न केवल फुसलाने और प्रलोभनों को बल्कि भय और धमकी जैसे अनाध्यात्मिक उपायों को, काम में लेते हैं। और जब मैं उनकी आन्तरिक दशा का निरीक्षण करता हूँ तो मैं उनमें से किसी में भी आध्यात्मिक उपलब्धि नहीं पाता। वे तो किसी पार्थिव शक्ति के वशीभूत हैं। उनमें से आपको मुश्किल से एक भी मिलेगा जो किसी तरह लक्ष्य के अधिक निकट पहुँचा हो। इसके विपरीत आप यह देख कर प्रसन्न होंगे कि हमारी संस्था में प्रशिक्षकों में से किसी की भी प्राणाहुति में माया का लेश मात्र नहीं रहता। उससे अभ्यासी की ओर केवल विशुद्ध धारा प्रवाहित होती है। मेरी राय में धार्मिकता और सदाचारिता का चारों ओर प्रसार करने के

लिए, किसी भी कीमत पर ऐसी विधियों को अपनाया जाना चाहिये। मैं संसार के प्रबोधन के लिए काम करने हेतु ऐसे श्रेष्ठ व्यक्तियों की सृष्टि के लिए ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ। समय बीतने पर ही इसके परिणाम देखने में आयेंगे। भावी संसार के लिये जो उपयोगी हों ऐसी सुयोग्य आत्माओं को तैयार करने के लिये हमें पूरा दिल लगा कर कोशिश करनी चाहिये। यदि कुछ थोड़े लोग हमसे छिटक कर अलग हो भी जाते हैं तो कोई फर्क नहीं पड़ता, क्योंकि अपने थोड़े दिनों के संपर्क से उन्हें जो हासिल हुआ है वह इस जन्म में नहीं तो अगले में फलेगा। इस तरह हमारी मेहनत कभी व्यर्थ या नष्ट नहीं होती।

❀ ❀ ❀ ❀

बहुत ऊँचे दरजे का संत भी मानव वृत्ति को उतार कर फेंक नहीं सकता क्योंकि उस दशा में जीवन लुप्त हो जायेगा। यह प्रतिबन्ध सदा रहेगा और अपना कोई न कोई प्रभाव दिखाता रहेगा। प्रकृति का यही रहस्य है।

❀ ❀ ❀ ❀

मैं अपनी अदना समझ के हिसाब से "आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्" का अर्थ बताता हूँ। भगवद्गीता के आठवें अध्याय के नवें श्लोक में भगवान् ने परमसत्य के प्रकाशमान स्वरूप का, जो सारी उपासना का लक्ष्य है, वर्णन किया है। यही सारी शुरूआत का बिन्दु भी है जैसा कि आदित्यवर्णम् में आदि शब्द बताता

है। पर इसके परे असलियत का एक और विशुद्ध प्रदेश है, जिसका वर्णन भगवान ने इसी अध्याय के बीसवें और इक्कीसवें श्लोक में किया है। यह सारी शुरूआत के परे का प्रदेश है जहाँ साधारण समझ के अर्थ में उपासना का भी अन्त हो जाता है। चूंकि ऐसे लोगों के सामने, जिन्होंने स्वाभाविक ढंग से उस दशा का स्वाद नहीं पाया है, उपासना के अन्त की बात करना खतरनाक हो सकता है, इसलिये उनसे 'आदित्यवर्णम्' को लाभकर ढंग पर 'अन्तिम दशा' कह कर बताया जा सकता है।

❀ ❀ ❀ ❀

जो कुछ भी देखा, सुना या कल्पना किया जा सकता है उस सबसे परे "वह" है। "उसके" पास, उसके द्वारा रचित चमक-दमक और शब्द को पार करके जाया जा सकता है।

❀ ❀ ❀ ❀

आपने अन्न शब्द की अन् (साँस लेना) धातु से व्युत्पत्ति का प्रयत्न करके बहुत महीन बात कही है।

प्रतीकों पर बहुत बल देने और भाषा में फँसे रहने के कारण वैयाकरण कभी कभी प्रकृति और असलियत के विकास की दृष्टि से शब्दों का असली मतलब समझने में असफल रहे हैं।

मैने तीस मार्च की रात में एक विचित्र स्वप्न देखा। जितना मुझे याद है, मैं आपको बता रहा हूँ। इससे अन्न का आप वाला

अर्थ समझ में आ सकता है। किसी तरह कटार से मेरी गरदन में घाव लगा और मैं मर गया। मैं नदी में बहा दिया गया। दिल में कोई धड़कन या साँस नहीं थी, पर जो कुछ घटित हुआ था उसका मुझे पता था। एक आदमी, जिसे पता था कि किसी ने मेरी हत्या कर दी है, पुलिस में रिपोर्ट करना चाहता था। इसलिए उसने पूरी तरह से मेरी जाँच की। उसने नब्ज टटोली जो रुक गई थी और उसने यह भी देखा कि दिल का धड़कना बन्द हो गया है। पर मुझे इस सब का पता था यद्यपि साँस नहीं आ जा रही थी। तब प्राण फिर से धीमे धीमे आने लगा, नब्ज का चलना शुरू हो गया और दिल भी अपना काम फिर करने लगा। इसके बाद मैं नींद से जगा और इस पर गौर करने लगा। मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि यद्यपि साँस और दूसरी चीजें नहीं थीं और शरीर मृत पड़ा हुआ था, फिर भी चेतना शेष थी। इससे यह पता लगता है कि जीवन का मूल कारण चेतना है। मैं समझता हूँ कि साँस का रहस्य समझाने के लिए मुझे यह दृश्य दिखाया गया था।

❀ ❀ ❀ ❀

परम तत्त्व की अनुभूति का तब प्रारम्भ होता है जब और सब अनुभूतियाँ समाप्त हो जाती हैं। मनुष्य के लिए जितनी सम्भव है उतनी ब्रह्म में लय अवस्था, जिन्होंने प्राप्त की है वे उसमें कभी पूरी गहराई के साथ और कभी कुछ उथलाई पर, लीन रहते हैं। जो मनुष्य ब्रह्म में सारे समय पूरी तरह

डूबा रहता है, कोई भी काम कर सकता है पर लगता वह प्रतिमा की तरह है।

❀ ❀ ❀ ❀

चेतना की पूर्णावस्था में दैवी गुणों का विकास होता है। यदि उसका किसी और चीज से सरोकार रहता है तब वह पूर्ण साक्षात्कार के मुकाम पर नहीं है। उसमें भूतकाल की कुछ भी स्मृति न रहने का बोध रहता है और थोड़ी सी गढ़न उसे अमूर्त को जानने लायक बना देगी। चाहे कोई साक्षात्कार के शीर्ष-बिन्दु पर हो, उसमें मानव तत्त्व रहता ही है।

❀ ❀ ❀ ❀

निस्सन्देह, परिवर्तनशून्य दशा में भी मनुष्य सांसारिक वातावरण से विचलित होता है। यह इस कारण होता है कि बहुत हलके रूप में ही सही पर मानवता के बन्धन का बने रहना अनिवार्य है और यही मनुष्य को अनन्तता में पूरी छलाँग लगाने से रोकता है। एक बात है जो ऊँची योग्यता वाले आदमियों में होती है। जब उसके अन्दर कोई विचार आता है, तो वह उस पर पूरा बल लगा कर चिन्तन करने लगता है जिसका परिणाम यह होता है कि उसकी तीव्रता बढ़ जाती है। वास्तव में, हमें अपने विचार का उसी सीमा तक प्रयोग करना चाहिए जितने की काम के लिए जरूरत हो। व्याकुलता इसलिए मन में घुस पड़ती है कि परिवार का बोझ हमारे कन्धों पर है। पर

जब कभी हमें लगे कि व्याकुलता सीमा के बाहर हो गई है, तभी हमें उसे त्याग देना चाहिए।

❀ ❀ ❀ ❀

भारतवर्ष और संसार की बेहतरी की पूरी उम्मीद है। संसार में परिवर्तन लाने का काम करने वाले विशिष्ट व्यक्ति ने करीब करीब अपना काम पूरा कर लिया है। भौतिक रूप में वह धरती पर बहुत धीरे धीरे आ रहा है क्योंकि यदि यह पूरे जोर के साथ लाया जाय तो विशिष्ट व्यक्ति को तुरन्त विदा होना पड़ेगा क्योंकि उनका काम पूरा हो चुका होगा।

जहाँ तक संसार के कष्टों की बात है, पार्थिव रूप में कोई भी व्यक्ति उनसे मुक्त नहीं है। हमारे अवतार भी कष्टों से मुक्त नहीं थे। जन्म से मृत्यु तक जो दु:ख हमें मिलते हैं, हमें उनका अन्त करना चाहिए। यदि दु:ख में ग्रस्त लोगों से हम अपनी तुलना करें तो हम देखेंगे कि हमारी कसक उनसे कहीं कम हैं क्योंकि हमारे अंदर किसी ऐसे तत्त्व का राज्य है जो कष्ट को गम्भीरता नहीं धारण करने देता।

❀ ❀ ❀ ❀

क्षमतासम्पन्न प्रशिक्षक तक ध्यान के समय विचारों के अतिक्रमण की शिकायत करता है। उसके बारे में मैं आग्रह-पूर्वक कहूँगा कि, जैसा मेरे गुरुदेव ने अपने एक लेख में लिखा हैं; कि प्राणाहुति के समय गुरु का सूक्ष्म शरीर जानकर या अनजाने अभ्यासी के शरीर में प्रवेश करता है और इससे

अभ्यासी के अन्दर उठने वाले तरंगमय विचार उसके अन्दर आ जाते हैं। यह अवश्य है कि उन्हें भेजा इस तरह जाता है कि प्रशिक्षक उन्हें अपना ही मानता है। खुशी की बात है कि आपके हिस्से में बहुत अच्छे अभ्यासी हैं, इसलिए बुरे और कुत्सित विचारों के आक्रमण आप पर होने की संभावना नहीं है। दुर्भाग्यवश मुझे थोड़े से ऐसे लोग मिले जिनके सम्पर्क से मुझमें कुत्सित भावना आई—जब मैं उनको प्राणाहुति देने लगा। तब मैने उनको मिशन के सदस्य स्वीकार करने से इनकार कर दिया। एक और व्यक्ति था जिसके विषय में मैने देखा कि जब मैं उसको प्राणाहुति देने लगा तो नंगी औरतों की छवि मेरे सामने प्रकट होने लगी क्योंकि वह पूरा व्यभिचारी था। इसलिए मैने उसे मिशन में नहीं लिया। मेरे गुरुदेव के भी, दो मामलों में, ऐसी ही बातें देखने में आई थीं। यदि क्षमतासंपन्न प्रशिक्षक अपने अन्दर उठनेवाले ऐसे विचारों को कम करना चाहता है तो वह अभ्यासी के वैयक्तिक मन को प्राणाहुति के समय इस तरह की क्रियाशीलता को रोक देने का सुझाव दे सकता है और इससे सहायता मिलेगी। पर इस प्रक्रिया का अक्सर सहारा नहीं लेना चाहिए क्योंकि प्रशिक्षकों को अभ्यासियों के बारे में वैयक्तिक मन की सहायता से बहुत बातें मालूम होती हैं।

* * * *

कभी कभी अभ्यासी को बहुत ऊँची अवस्थाओं का अनुभव होता है क्योंकि गुरु के माध्यम से अनुग्रह ऊपर से आता है। यह भी होता है कि अनजाने भी गुरु बहुत ऊँची अवस्था से प्राणाहुति देता है और संवेदनशील अभ्यासी को उसके प्रभाव का पता चल जाता है।

* * * *

प्यारे भाई, मैं सच सच कह रहा हूँ कि अभ्यास काल में मुझे इतनी जलन होती थी कि मेरी सारी छाती में जलने के दाग पड़े हैं। पर वे अब फूलों की क्यारियाँ और अग्नि-पुष्प हो गये हैं। मैने शान्ति को सस्ते में बेचकर अध्यात्म का क्षेत्र पार किया है यानी उसे पाने के लिए शान्ति की बलि दी है। और ईश्वर जानता है कितने बरजक (बीच रास्ते के पड़ाव) पड़ते हैं जब आगे बढ़ते जाने के लिए बीच बीच में रुकना पड़ता है। बरजकों (मध्यवर्ती अवस्थाओं) के बारे में मैने एक पत्र भी लिखा है जिसका आपको अध्ययन करना चाहिए। उसकी इबारत इस समय मुझे बहुत याद नहीं है। और प्यारे भाई, जब किसी को यह अनुभव हो जाता है कि किसी विशिष्ट व्यक्ति से वास्तविक आध्यात्मिक लाभ मिल सकता है, तब उसे अपने को उसके हवाले कर देना चाहिए। यहां, चूंकि हमें इसी जन्म में मुक्ति प्राप्त करना है तो हमें सारे संस्कारों का क्षय करना है—कुछ को भोग करके और बाकी

को भून कर। श्री क पर एक सिलसिला चालू हो गया था जिसका मुझे पता था, पर इसके अतिरिक्त और कारण भी थे जिन्हें मैं उनसे पूछना चाहता था ताकि उन्हें भी अनुभव हो सके। उन्हें सन्तुष्ट करने के लिए, थोड़ा जल्दी हो, मुझे गुरुदेव से प्रार्थना करके उनकी सफ़ाई करनी पड़ी। अन्यथा, उनकी बेहतरी के लिए उन कारणों को मैं बने रहने देना चाहता था। अब जो भी हो, कृपया प्रार्थना करते रहिए कि भविष्य में इस तरह की कोई चीज अन्दर न बसेरा कर ले।

(शरीर-) तंत्र को साफ करने में मुझे कई महीने लगते हैं। यही कारण है कि श्री क को कुछ अधिक अनुभव नहीं हुआ। 'मानव' के निर्माण के लिए यह निर्मलीकरण बहुत आवश्यक है। मेरा ध्यान सदा इस तरफ जाता है और यही वास्तव में श्रद्धेय लालाजी का भी आदेश है। श्री ख प्रकृति से अधिक साफ़ थे, इसलिए उन्हें बहुत शीघ्र लाभ का अनुभव हुआ।

❀ ❀ ❀ ❀

प्यारे भाई, मैं नहीं समझता कि विशिष्ट व्यक्ति धर्मपरायणता के मार्ग पर हर किसी को ले आने जैसा हर काम कर सकता है। भगवान श्रीकृष्ण तक दुर्योधन का दिमाग ठीक नहीं कर सके और इस तरह के बहुत लोग थे। और अन्त में उन्हें महाभारत का युद्ध घटित करना पड़ा। अभी भी यह

संभव है कि युद्ध और रक्तपात इस सीमा तक बढ़ जायें कि संसार का एक बड़ा भाग आबादी से रहित हो जाय। केवल वे ही लोग जो भगवान कृष्ण के भक्त थे उनसे कुछ लाभ हासिल कर सके। इसलिए श्री क का यह कथन कि विशिष्ट व्यक्ति स्वयं लोगों को अध्यात्म की ओर उन्मुख कर देगा, सही नहीं हो सकता। आपका सुझाव कि हम विशिष्ट व्यक्ति द्वारा लाभान्वित हो सकते हैं बहुत उपयुक्त है।

❀ ❀ ❀ ❀

यह सामान्य नियम है कि इच्छापूर्वक बल लगाये बिना प्रकाश का प्रवाह स्वतः आरम्भ होना चाहिए। और जब लोगों को स्वयं यह जाने बिना किसी व्यक्ति से आध्यात्मिक लाभ मिलने लगता है तो वह प्रशिक्षक बनाये जाने की योग्यता रखता है।

❀ ❀ ❀ ❀

ध्यान के समय आपको स्वयं सांस रोकने की जरूरत नहीं है। यदि वह स्वयं रुक जाती है तो यह ठीक और अच्छा है। जब उड़ान बहुत ऊँची जाती है, तब यह अक्सर होता है कि घंटों तक साँस नहीं आती और जब विचारशून्यता उत्पन्न होती है तब साँस धीमी हो जाती है।

❀ ❀ ❀ ❀

इच्छा उसे कहते हैं जिसकी पूर्ति से दिल को सुख मिलता है और जिसकी पूर्ति न होना दुःख, दुर्गति और पीड़ा लाती है।

उसका भोग करने वाले भी आप ही हैं और उसके कर्त्ता भी आप अकेले ही हैं। उद्देश्य के साथ किसी लगाव के बिना, आदेश का पालन ही कर्तव्य है। महमूद गज़नवी के पास अयाज़ नाम का एक गुलाम था जिसे वह बहुत चाहता था। बादशाह के इस बरताव से दूसरे दरबारी खुश नहीं थे। किसी ने बादशाह से पूछा, "आप अयाज़ को इतना ज्यादा क्यों चाहते हैं?" कुछ समय बाद बादशाह ने हर दरबारी से हीरों के एक बहुत कीमती फ़ानूस को, जिसे वह भारत से लाया था और जो सभा-भवन की छत से लटका हुआ था, तोड़ कर टुकड़े टुकड़े करने को कहा। पर दरबारियों में से किसी ने उसे छुआ तक नहीं। तब बादशाह ने अयाज़ को बुलवाया और उसे हीरों के फ़ानूस को तोड़ डालने का हुक्म दिया। अयाज़ ने आज्ञा का तुरन्त पालन किया और उसके टुकड़े टुकड़े कर डाले। बादशाह ने दरबारियों से कहा, "सिर्फ इसी वजह से मैं अयाज़ को चाहता हूँ। उसने मेरा हुक्म पूरा करना अपना फ़र्ज समझा और नफे नुकसान की फ़िक्र कतई न की।" इसलिए कर्तव्य को इच्छा नहीं कहा जा सकता।

❀ ❀ ❀ ❀

तर्क के माध्यम से असलियत तक पहुँचना असंभव है। असलियत तो एक अन्त:प्रेरणा की (वजदानी) चीज है। यह बिलकुल सही है और अधिकतर सूफ़ी (मुस्लिम रहस्यवादी) वजदानी हालत को ही असलियत की हालत मानते हैं। लेकिन

हमारे विचारक इससे भी आगे गये हैं। वजदान फिर भी पदार्थ से संयुक्त होता है और अहं भाव उसमें छिपा रहता है। इसके परे जो दशा होती है उसे असलियत की दशा कहा जा सकता है। तर्क वहाँ नहीं पहुँच सकता। जब व्यष्टि मन से वैयक्तिकता निकल जाती है तो सिर्फ मन बचता है जो केवल एक होता है और तब इसे ईश्वरीय मन कह सकते हैं। केवल वही अकेला स्व की असली दशा नजर के सामने ला सकता है। तर्क की पहुँच उस सीमा तक है जहाँ तक आप दूसरी चीज को किसी अभिप्राय-विशेष से देखते हैं।

❀ ❀ ❀ ❀

यह मेरी हार्दिक इच्छा है कि मेरे सत्संगियों की मुझसे अधिक उन्नति हो। पर यह सब उनके प्रेम, परिश्रम और ईश्वर के अनुग्रह पर निर्भर करता है। जब प्रेम और परिश्रम रहते हैं तब साँकल बजने लगती है और उसकी आवाज जरूर मालिक तक पहुँचती है।

❀ ❀ ❀ ❀

प्रतीक्षा भी एक प्रकार का तीव्र स्मरण है जो अध्यात्म के लिए बहुत लाभकारी है। एक शायर ने लिखा भी है कि यार की इन्तजारी में जो मजा है वह मिलने में नहीं।

❀ ❀ ❀ ❀

कट्टरपन को मैं ठीक एक दीवार की तरह मानता हूँ जिसे कोई अपने आगे खड़ी कर लेता है और जिससे रास्ता बन्द हो

जाता है। यह चीज किसी तरह आ जाती है। और हमारे अन्दर यह दोष मुसलमानों को लगातार देखते रहने से आया, नहीं तो हमारे यहाँ नदी जैसा प्रवाह था कि एक कण तक ठहरा नहीं रह सकता था।

❀ ❀ ❀ ❀

यह असंभव है कि ये चीजें दिमाग पर किसी समय छाप न छोड़ें। नमक की खान के अन्दर जो कुछ भी जाता है, नमक हो जाता है। हमारे देश के कुछ भागों में आपकी मुलाकात बुद्धिजीवी वर्ग से होगी। उन्हें अपनी ही भावनायें प्यारी हैं।

❀ ❀ ❀ ❀

यदि मैं अन्तिम अवस्था का वर्णन करने लगूँ तो वैज्ञानिक संभवतः मुझ पर झपट पड़ेंगे। अन्तिम सीमा को बताना बहुत कठिन है पर फिर भी मैं इतना तो लिखूँगा। जब अभ्यासी अपने स्वयं को और ईश्वर को भी भूल जाता है तब यह माना जा सकता है कि वह फिर इस संसार में किसी रूप में नहीं आयेगा। ऐसी दशा में वह ऐसे महासागर में डूबा रहेगा कि उसके लिए "उसको" छोड़ कर और कुछ नहीं रहेगा। इसके पहले, दूसरी दुनिया के लिए वह अपनी दुनिया को बेच बाच चुका होगा। अब यदि वह दूसरी दुनिया को भी बेच डाले तो सिर्फ असलियत बचेगी।

❀ ❀ ❀ ❀

प्रिया प्रेमी को घुटनों के बल, जैसे चाहे, चलने को बाध्य कर सकती है। घुटनों के बल चलने में भी प्रिया प्रेमी को कुछ शिक्षा देती है। और घुटनों के बल चलने की भावना भी प्रेमी प्रिया से ही ग्रहण करता है। इसलिए जो भी चाल मैं चलता हूँ, यदि वह ठीक है, तो इसमें आपकी ही प्रशंसा है और यदि वह गलत है तो इसमें आपका स्वयं को धोखा देना शामिल है। अब यदि इस पर व्यापक दृष्टि से विचार करें तो आप समझ जायेंगे कि हमें इस प्रकार घुटनों के बल चलना केवल "उन्हीं से" प्राप्त हुआ है जिनकी स्मृति भक्त को अतीव बेचैनी से उत्तेजित कर देती है।

❀ ❀ ❀ ❀

सृष्टि काल में हर चीज एकदम नपी तुली अवस्था में नहीं उपलब्ध थी। इसलिए हर चीज अपनी वास्तविक प्रतिफलित अवस्था में प्रकट थी। नदी सामने मौजूद थी और किसी भी चीज—एक कण तक—का आवरण नहीं बना था जो निगाह के लिए रुकावट पैदा करता।

❀ ❀ ❀ ❀

सतत स्मरण पहले तो वही है जो आप कर रहे हैं। दूसरे जब दिमाग थक जाता है तब "उनकी" स्मृति वही प्रभाव उत्पन्न करेगी। लक्ष्य मोक्ष है। आपने लिखा है कि आन्तरिक दशा एक सी नहीं रहती बल्कि कभी बहुत सूक्ष्म और हलकी

होती है और कभी इसके विपरीत। ऐसा होता ही रहता है। यदि हलकापन और भारीपन, जो परस्पर-विरोधी अवस्थायें हैं, नजर में न आयें तो परिवर्तन-शून्य दशा, जो बहुत सूक्ष्म अवस्था है, पहचान में नही आयेगी। इसके अतिरिक्त, जहां अभी हमारा सूक्ष्म निवास है वहाँ से हम अगले बिन्दु की ओर बढ़ते हैं तो भारीपन का अनुभव होता है। उसका तब तक अनुभव होता रहता है जब तक वह सूक्ष्म अवस्था भारीपन के प्रभाव को दूर करके, स्थिर नहीं हो जाती। और यही क्रम चलता रहता है जब तक हम ऐसी अवस्था तक नहीं पहुँचते जिसके परे कोई भी बिन्दु नहीं है। इसलिए अब आप यह समझ चुके होंगे कि ये सारी चीजें आपकी उन्नति की अवस्था को प्रदर्शित कर रही हैं।

❀ ❀ ❀ ❀

आपने लिखा है, "कृपा करके मुझे वह चीज दीजिये जो मेरे लिये आप बहुत आवश्यक समझते हैं।" और उसके आगे "मैं आशा करता हूँ कि आप उसे अवश्य देंगे।" इसका सांसारिक उत्तर तो यह है कि जब मैं आपका हूँ तो मेरे पास जो कुछ भी है वह सब पहले से ही आपका है। और मेरी हार्दिक इच्छा अपने को बेच डालने की है। पर कोई ग्राहक आगे नहीं आ रहा है। यह इस कारण से है कि मैंने अपना कोई दाम नहीं नियत किया है। और ऐसा जमाना आ गया है कि मुझे कोई मुफ्त तक नहीं लेना चाहता है। और एक तरह यह भी ठीक

ही है। मुट्ठी भर हड्डियों के ढाँचे का कोई करेगा भी क्या ? "नानक बूढ़े बैल को कौन बाँध भुस दे ?" इसलिए प्यारे भाई मुझको खरीदने के लिए अपने को तैयार कर लो, जिससे आवाज़ लगाते हुए मुझे घर-घर की फेरी न देनी पड़े।

और प्यारे भाई, अच्छे स्वास्थ्य और धन के लिए किसी सीमा तक हर आदमी के अन्दर कामना रहती है। यह सन्देह से परे एक तथ्य है। पर आपके अन्दर कामना उसकी है जो केवल आपका है और आपके पास है और इसीलिए आप उसके लिए अधिक व्याकुल हैं।

❀ ❀ ❀ ❀

यह सम्भव है कि ज़ीरो (शून्य) का अर्थ मैं उतनी अच्छी तरह से न समझता होऊँ जैसे दूसरे लोग समझते हैं क्योंकि एक ज़ीरो दूसरे ज़ीरो की दशा को, और मृत व्यक्ति शव को दशा को, नहीं समझ सकते। एक तरह से, ऐसी दशा को आप वह दशा कह सकते हैं जहाँ जो कुछ भी द्वैतता के भाव हैं सब के सब समाप्त हो जाते हैं और हम जीवित शव मात्र रह जाते हैं। या हम असलियत में इस तरह घुल जाते हैं कि सारी भेद-बुद्धि लुप्त हो जाती है और असली और नकली के फर्क का पता नहीं चलता।

❀ ❀ ❀ ❀

आपने मुझसे पूछा है कि आस्था कैसे बढ़े। यदि प्रशिक्षक पर कुछ विश्वास किया जाय और उसके कारण कुछ लाभ का

अनुभव होने लगे, तो इससे सच्चे जिज्ञासु के हृदय में आस्था बढ़ने लगेगी।

आपने एक बहुत पेचीदा सवाल पूछा है, "बुद्धि और भावना कब एक हो जाते हैं ?" इसके लिए छोटा सा जवाब होगा, "लैला और मजनू दोनो एक ही जगह रहते हैं (लैला व मजनू एक ही मोहमिल में रहते हैं)।"

आप उनके संयोग को शरीर और आत्मा के या मन और बुद्धि के संयोग जैसा समझिए। दोनो ही प्रायः अनिवार्यतः सहवर्ती हैं। आगे चल कर बुद्धि एक भिन्न रूप धारण कर लेती है जिसे ईश्वरीय समझ कहते हैं। और जब ऐसा होता है तो भावना का रूप भी बदल जाता है यानी भावना भी उसके समनुरूप होने लगती है। एक दिखाने वाली हो जायेगी, दूसरी सूचना देने वाली। मैं एक बात और कहूँगा : अनुभूति आत्मा से बहुत निकटता से जुड़ी होती है और बुद्धि अनुभूति के बहुत निकट होती है। दूसरे शब्दों में अनुभूति आत्मा के अधिक निकट है और बुद्धि अनुभूति के। कुछ भी, कहीं नहीं जाता; केवल उसका समुचित उपयोग होना प्रारम्भ हो जाता है। आपके सतत स्मरण का सम्बन्ध बुद्धि से नहीं, हृदय से है। कृपया विद्वानों से बुद्धि और भावना के विषय में पूछताछ करिये, वे अच्छा उत्तर देंगे। मेरा उत्तर तो बेपढ़े लिखे का है। सतत

स्मरण, अनुभव नहीं किया जाता पर किया जाता है, और आप इसकी विधि पहले से ही जानते हैं।

❀ ❀ ❀ ❀

सच तो यह है कि हर आदमी को तीन तरह के ऋण चुकाने पड़ते हैं। आप तो इन ऋणों को चुका रहे हैं। भाई, मैं ऋषि-ऋण की जगह गुरु-ऋण रखना चाहूँगा। मैं इस ऋण को चुकाना चाहता हूँ और यह तभी सम्भव होगा जब मैं एक आदमी को उसी तरह तैयार कर सकूँ जैसे मेरे गुरुदेव ने मुझे किया। पर इसकी बेबाकी भी केवल मेरे गुरुदेव के हाथ में है।

❀ ❀ ❀ ❀

इस सांसारिक जीवन में हर किसी को आघात मिलते ही हैं और यह आपके विषय में आपके वेतन को लेकर हुआ है। यदि आप इसे प्रियतम से मिले उपहार के रूप में नहीं ग्रहण कर सकते तो इसे शैतान से मिला मानिये और तब आप में कुछ साहस आयेगा। ईश्वर के अनुग्रह से भारीपन दूर हो जायेगा और शायद यह दूर हो भी गया है।

❀ ❀ ❀ ❀

इसलामी मान्यता के अनुसार हम आदम की संतान हैं, जो निषिद्ध फल खा लेने के कारण धरती पर फेंक दिये गये थे। स्वभावतः वही बात हम सब के अन्दर आ जानी चाहिए। पर भाई, इस घटना को हुए करोड़ों साल बीत गये। अब उसका

प्रभाव आपके रक्त में कैसे बचा रह सकता है ? खून में घुसने के बाद वह प्रभाव समाप्त हो गया। निःसन्देह उनकी बीबी हव्वा ने हमारा पीछा करना नहीं छोड़ा है। न जाने कितनी पीढ़ियों में वह अपने को प्रकट करती रही है। यही हव्वा हमें हमारे स्वदेश से स्वर्ग में लाई और हम उसी की जूतियों की ठोकर खा कर धरती पर आये। भाई, कितना अधःपतन हुआ ! अब यदि हम इस हव्वा के पीछे भागना बंद कर दें तो हमें खोया हुआ स्वर्ग वापस मिल जायेगा। यह विचार कि आप आदम हैं छोड़ कर तो देखिये। अरे आप अपने उसी मूल निवास-स्थान पर जहाँ से आप आये हैं, पहुँच जायेंगे। आदम और हव्वा की कथा के अनुरूप हमारी हिन्दू पौराणिक कथाओं में मनु और शतरूपा की कथा है। आप भूल भर जाइये कि आप आदम हैं और हव्वा के चक्कर से आपको छुड़ाना मेरा उत्तर-दायित्व हो जायेगा। अस्तु, आप इस समय आदम के विचार से मुक्त होने के लिए स्वरूप का ध्यान कर रहे हैं। गालिब ने लिखा है।—

न था कुछ तो खुदा था, कुछ न होता तो खुदा होता।
मिटाया मुझको होने ने, न होता मैं तो क्या होता।।

❀ ❀ ❀ ❀

प्यार में झिड़कियाँ भी सही जाती हैं. पर प्यारे भाई उन झिड़कियों में एक अजीब मिठास होती है। और वे

झिड़कियाँ सिर्फ प्यार के नशे में ही मिल सकती हैं। ऐसा व्यक्ति कभी हलके और नीचे चरित्र का नहीं हो सकता। मैं सूरदास के एक प्रसिद्ध भजन का हवाला दूँगा जो उन्होंने कृष्ण के प्रेम में लिखा है :—

"बाँह छुड़ाये जात हो, निबल जान कै मोहि।
हिरदै ते जब जाओगे, तब जानोगो तोहि ।।"

उन्होंने यह तब कहा था जब वे अन्धे होने के कारण कुँये में गिर पड़े थे और कृष्ण महाराज ने उन्हें बाहर निकाल दिया था। तब उन्होंने कृष्ण का हाथ कस कर पकड़ लिया था और कहा था कि अब मैं तुम्हें जाने न दूँगा। पर कृष्ण तो बाँह छुड़ा कर भाग गये।

गलती सबसे होती है और गलती करना इन्सान की फितरत है। और प्यारे भाई मेरे गुरुदेव ने मुझसे कहा था, "मैं और लोगों की सारी गलतियाँ माफ कर दूँगा पर तुम्हारी एक भी नहीं।" मैं निस्सन्देह इसलिए प्रसन्न हुआ कि यह विशेष व्यवहार उनके विशेष प्रेम के कारण है। एक कहानी है :

मजनूँ ने अपनी प्रियतमा लैला से वियोग के कारण अपने बदन में राख पोत ली और भीख माँगना शुरू कर दिया। लैला हर वृहस्पतिवार को गरीबों को रोटी बाँटती थी। उसका असली मकसद तो यह था कि अपने भिक्षापात्र को लिये

हुए मजनूँ भी मेरे पास आये। लैला ने उसे भीख देने के बजाय उसका बरतन ही तोड़ डाला। और इस व्यवहार से मजनूँ पर नशा चढ़ गया और आनन्दातिरेक से भरकर वह नाचने लगा। लोगों ने उससे पूछा, "दोस्त, कितने बेवकूफ हो तुम। अन्य सबको वह रोटी देती है मगर तुम्हारा कटोरा तोड़ देती है और तुम हो जो प्यार के पागलपन में नाच रहे हो।" उसने जवाब दिया, "यह बरताव सिर्फ मेरे लिए है और यही उसके प्रेम की विशेषता है।"

❀ ❀ ❀ ❀

आपकी यह धारणा, कि इस बार आपको अधिक लाभ नहीं मिल सका, बताती है कि अध्यात्म के लिए आपकी प्यास बहुत बढ़ गयी है। जब आप किसी भी तरह स्वरूप का ध्यान न कर सकें, तो आप सिर्फ यह मान लीजिए कि स्वरूप आपके सामने है। जब यह भी न किया जा सके तो ध्यान की दिशा अपने आप प्रकाशित होगी।

❀ ❀ ❀ ❀

दरवेश के लिए बराबर चलते फिरते रहना बेहतर है। आपके पास जमकर रहने के लिए कोई मुकाम नहीं है। आपका आखिरी पड़ाव तो सिर्फ "वही" है, और वहाँ आपके पहुँचने के पहले आनन्द भी बिदाई ले लेता है। और वहाँ कैसी दशा होती होगी? यदि उसे 'अज्ञान' कहा जाय, तो वह भी तो बिदा हो जायेगा। एक शब्द है जो अवश्य उस पर प्रकाश डालता है

और वह है पूर्ण अज्ञानता। मैने उसे परिवर्तन-शून्य दशा का नाम दिया है। वस्तुतः यही असली परदा है। आध्यात्मिकता तो खैर छूट ही जाती है। यही सारे परिश्रम और प्रयास का सार है। इसलिए, प्यारे भाई, यही वह चीज है जिसकी लोगों ने कभी कामना नहीं की, नहीं तो यह कभी की मिल गयी होती। और जब किसी को इसका कुछ पता ही नहीं था तो इसकी कामना कौन करता? आभार मेरे गुरुदेव का है जो इसे लोगों की जानकारी में लाये। अब आप 'पूर्ण अज्ञानता' शब्द लीजिये—इस अर्थ में कि 'जो हाँ और ना के बीच होता है।' यह कबीर के मतानुसार है। अच्छा अब मैं असली बात पर आता हूँ: सच्चा परमानन्द वह है जिसमें कोई आनन्द मिलता ही नहीं। जब तक आनन्द की अनुभूति होती रहती है तब तक उसमें माया (पार्थिवता) मिली रहती है। अब, जब आप अपने परमानन्द की दशा को भारी कहकर बताते हैं तो यह सिद्ध होता है कि अज्ञान के केन्द्र से आपकी कड़ी जुड़ी हुई है, और यह परिसीमन के कारण है। यदि आप इसे भारीपन के बजाय ऊब कह कर बतायें तो अधिक मुनासिब होगा। ऊब का अर्थ है कि चूंकि अब आप और अधिक ऊँचाई पर जा रहे हैं, इसलिए आपको सुखद और हलकी हवा की जरूरत है। शान्ति कभी उबाने वाली नहीं होगी। मैने कारण ऊपर बता दिया है। सिर्फ ऐसे ही आदमी को इसकी चाह होगी जिसकी अभी एक ही आँख की क्षति हुई हो, दोनों की नहीं।

यदि सौभाग्यपूर्ण संयोग से झोपड़ी में रहने वाले व्यक्ति को एक अच्छा और आरामदेह मकान मिल जाता है, तो उसे वह बहुत अच्छा लगता है। पर जब बहुत दिन उसमें रहते रहते वह उसका आदी हो जाता है, तो वह उससे भी बेहतर मकान की सोचने लगेगा। यह उदाहरण यह समझाने के लिए है कि आपको भारीपन और ऊब का क्यों अनुभव हो रहा है। आपने लिखा है, "मैं महसूस करता हूँ कि मेरे मन की रुझान इस हालत से बाहर निकलने की है। इसलिए या तो मेरा मन अभी तैयार नहीं हुआ है या ये शान्ति और परमानन्द की सच्ची दशायें नहीं हैं।" मन की स्वाभाविक वृत्ति या शक्ति अच्छी चीज का—चाहे वह पार्थिव हो चाहे आध्यात्मिक—अनुभव करने की होती है। अतएव जो कुछ इसकी निगाह में आता है उससे वह जुड़ जाता है—चाहे वह शान्ति हो चाहे परमानन्द।

❀ ❀ ❀ ❀

मैने आपको विधि बता दी है। पर जब इलाज करने के लिए बहुत से हकीम मोजूद हों तो हमें बहुत बिरले और खास मामलों को छोड़ कर, इससे कोई मतलब नहीं रखना चाहिए। जो काम आपके हाथों में है वह किसी तरह थोड़ा नहीं है और इसके और भी बढ़ने की उम्मीद है। मैं सचमुच बहुत खुश हुआ कि आप मसीहा होना चाहते हैं। पर वैसा होने के पहिले आपको अपने अन्दर दर्द पैदा करना पड़ेगा।

❀ ❀ ❀ ❀

श्रद्धा का मतलब है कि व्यक्ति अपने विचार को गुरु के साहस के साथ दृढ़ता से जोड़ ले।

❀ ❀ ❀ ❀

मैं केवल असली हीरा देता हूँ जिसकी परख सिर्फ जौहरी कर सकता है। अगर काँच का व्यापारी हीरे की कीमत न जान सके तो इसमें हीरे का कोई दोष नहीं है। फ़ारसी में एक शेर है जिसमें कहा गया है: अगर उल्लू दिन में सूरज को नहीं देख पाता है तो इसमें सूरज का कोई कसूर नहीं है। अगर एक ही चीज से बहुतों का भला होता है, सिर्फ एक को फायदा नहीं पहुँचता तो ऐसा उसी के दोष से होता है। अगर कोई आपके पास शिष्य और जिज्ञासु के भाव से आता है तो वह कभी लाभान्वित हुए बगैर रह ही नहीं सकता।

❀ ❀ ❀ ❀

मैं आपकी संवेदनशीलता में कोई खामी नहीं पाता। पर गलती आत्म-विश्वास की कमी की है। जो चीज ठीक होती है उसके बारे में दिल में एक इत्मीनान का एहसास होगा।

....

अगर सच्चा प्रेम हो तो शरीर का एक एक कण सात साल के अन्दर रूपान्तरित हो जाना चाहिए।

❀ ❀ ❀ ❀

जितना हो सके किफ़ायतशार बनिये। किफ़ायत से मेरा मतलब ऐसी कंजूसी से नहीं है जिससे बच्चों को दिक्कत हो।

❀ ❀ ❀ ❀

सेवा का आपका विचार मात्र लोगों को आपके आध्यात्मिक प्रशिक्षण के दायरे में ले आयेगा। आध्यात्मिक पुरुष का विचार अपनी प्रकृति के अनुरूप वातावरण की रचना करता है पर हम सब मनुष्य हैं और हमें मानवीय समझदारी की माँग के अनुरूप तरीके ही अपनाने चाहिये और यही हमारा कर्तव्य भी है। जब एक बार लहर उठ खड़ी होती है तो वह गिरती नहीं और हमें लहर उठाने की कोशिश करनी चाहिये। मैं चाहता हूँ कि कोई विज्ञापन न किया जाय यद्यपि हर क्रिया-कलाप खुद अपना विज्ञापन हो जाता है, यदि वह सेवा के विचार में बदला नहीं जाता। इसलिए वह बदलाव लाइये। और हम वही कर रहे हैं।

❀ ❀ ❀ ❀

श्री क ने अपने पत्र में अपने अन्दर क्रोध की शिकायत की है। उसका उत्तर यह है कि उन्हें उसे दूर करने के लिए इस तरह ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिए कि आँसू फूट कर बह निकलें।

❀ ❀ ❀ ❀

अभ्यासी जितना अधिक उपर पहुँचता जाता है, खास कर बिन्दु 'ए' के बाद, उतना ही उसे प्रशिक्षण देना मेरे लिए आसान होता जाता है। और आन्तरिक वृत्तियाँ परिष्कृत

होती जाती हैं। फिर भी आन्तरिक वृत्तियों को प्रकृति की समरूपता में लाने के लिए परिश्रम तो करना ही पड़ता है और इसी को सचमुच "बनाना" कहा जाता है और यह बड़ा कठिन काम है।

❀ ❀ ❀ ❀

कोई संत कितना ही ऊपर क्यों न पहुँच जाये, मानवता, जो स्वयं एक प्रतिबन्ध है, उसमें फिर भी बनी ही रहती है। कबीर कहते हैं :

"जेहि मरनी से जग डरे सो मेरो आनन्द,
कब मरिहौं कब भेटिहौं पूरन परमानन्द।"

एक फारसी के शायर ने कहा है, "कभी मैं नौवें बहिश्त में तख्त पर बैठता हूँ और कभी मैं अपने तलुवे के भी नीचे पहुँच जाता हूँ।" यदि यह प्रतिबंध या बंधन छिन्न भिन्न कर दिया जाय तो आत्मा नश्वर मानव शरीर को छोड़ कर उड़ जाती है। इसलिए गुरु उससे छेड़छाड़ नहीं करते। हमारे लालाजी ने जिन अनेक नई बातों की खोज की उनमें से एक है सोलह वृत्त जो "सत्य का उदय" में एक रेखा चित्र में दिखाये गये हैं। जिनके परे, मेरे गुरू महाराज को या जिस पर उन्होंने कृपा की, उसको छोड़कर, और कोई अब तक नहीं जा पाया। जब कोई सत्रहवें वृत्त में अपने प्रवेश का सुखद समाचार लाता है तब वहाँ एक बन्धन निर्मित करना गुरु का कर्तव्य हो जाता है ताकि आत्मा उड़

कर अपने उद्गम-स्थान में न पहुँच जाय । मेरी कामना है कि लोग मेरे जीवन-काल में ही सत्रहवें वृत्त में अपने पहुँचने का सुसमाचार मेरे पास लायें । पर यह सब ईश्वर के हाथ में है । कोई पूजा, कोई अभ्यास इसके आगे जाने में सहायता नहीं कर सकता । केवल ऐसे गुरु का संकल्प, जिसकी स्वयं यहाँ तक पहुँच हुई हो, इस यात्रा में आगे बढ़ने में सहायता दे सकता है ।

❀ ❀ ❀ ❀

प्यारे भाई, आप मुझसे मजदूरी माँग रहे हैं ! मैं तो खुद आपको ही मालिक समझता हूँ । इसलिए यह विस्मय की बात है कि मालिक अपने किये हुए काम की मज़दूरी अपने नौकर से माँगे । क्या मैं कुछ और भी लिखूँ ? लेकिन मैं डरता हूँ कि लोग समझेंगे कि मैं मालिकपना दिखा रहा हूँ । पर प्यारे भाई, मैं किस पर मालिकपना दिखाऊँगा जब मेरे पास न कोई शिष्य है न मेरा ईश्वर ही । ईश्वर के अनुग्रह से मैं प्राय: हमेशा निषेध की अवस्था में रहता हूँ जिसमें न खुद मैं रहता हूँ न मेरा ईश्वर । मुझे भय है कि लोग मुझे नास्तिक कहने लगेंगे । मैने पहिले ही नास्तिकता को तोड़ ताड़ डाला है और यह मेरे गुरुदेव के आशीर्वाद के कारण हुआ ।

एक शायर ने कहा है, "कोई भी इबादत (पूजा) कुफ्र (सच्ची निष्ठा की कमी) से बईद (रहित) नहीं है, चाहे कोई

बुत (प्रतिमा) की पूजा करे चाहे अल्लाह का नाम ले।" और प्यारे भाई, नमकीन स्वाद से रहित नमक के ढोके में, यानी निषेध की इस दशा में, कितना सार है कि आप इससे कभी अलग होना ही नही चाहते। यहाँ तक कि यद्यपि प्रशिक्षण-विधि के अनुसार प्राणाहुति देते समय इस अवस्था से नीचे आना पड़ता है, मैं ऐसा नहीं कर पाता। यही कारण है कि अभ्यासी के अन्दर मिशन के सिद्धान्तों के प्रति निष्ठा उत्पन्न करने के लिए शान्ति और स्थिरता को छोड़कर और कोई अन्य भाव उत्पन्न नहीं किया जाता। पर ऐसा हुआ है कि यदि मैं अपनी पूर्व अवस्था में एक क्षण के लिए भी चला जाता हूँ तो मैं उस अवस्था की केवल छाया का अनुभव करता हूँ। मुझे याद है कि एक बार मैंने किसी को लिखा था, "प्यारे भाई, आपने मुझे आध्यात्मिक प्रशिक्षण दिया है। और केवल आप ही के कारण आध्यात्मिकता में मेरी प्रगति हुई है।" और यह भावना बिलकुल सही थी। जब मैं ऐसी दशा में आता हूँ तब मुझे आप गुरु जैसे प्रतीत होते हैं। नहीं, आप स्वयं गुरु ही हो जाते हैं। और स्वभावत: यह स्वीकृति मेरे अन्दर उपजती है कि केवल आप ही लोगों ने मुझे प्रशिक्षण दिया है। मैं चाहता हूँ कि मेरे साथी अपनी गलतियाँ और मूर्खतायें—या आप उनका जो भी नाम रखें—मुझे बतायें। पर जब मैं दूसरों से यह अपेक्षा करता हूँ तब सबसे पहिले मुझे उनके सामने अपनी मूर्खतायें रखनी चाहिए। एक बार ऐसा हुआ कि पंडित 'क' जिन्हें

अपने ज्ञान और विद्वत्ता पर बड़ा गर्व था, मुझे ज्ञान के क्षेत्र में (अपने द्वारा) पराजित समझने लगे। मैंने सोचा कि गर्व का पोषण करना उनके लिए शुभ नहीं है। इसलिए मैंने एक कलाबाजी खाई और अपनी पहिले की एक हालत में आ गया। और तब मैंने उनको लिखा। आप हसेंगे यह जान कर कि मैंने उन्हें क्या लिखा। मैंने लिखा था, "यह केवल मैं ही था जिसने राम और कृष्ण को इस संसार में भेजा था। यह केवल मैं ही था जिसने श्रुतियों को ऋषियों के अन्तस् में प्रकाशित किया था।" अब आप समझ गये होंगे कि क्यों आप अक्सर अपने को अँधेरे में पाते हैं।

❀ ❀ ❀ ❀

एक ऐसे आदमी को, जो निषेध की अवस्था में है, दूसरों का दुःख देखने पर दुखी और सुख देखने पर सुखी स्वतः ही हो जाना चाहिए। पर यह केवल सतह पर ही होना चाहिए और (कुछ ही देर के) बाद में उसे "जैसा वह है" वाली अवस्था में लौट जाना चाहिए।

❀ ❀ ❀ ❀

हम हृदय पर क्यों ध्यान करते हैं जब सिर्फ दिमाग हर चीज के बारे में सोचता है? हृदय मन की गतिविधि का क्षेत्र है, और दिमाग और सारे शरीर में जितने बिन्दु हैं लगभग वे सब हृदय में पाये जाते हैं। उस पर ध्यान करने से उन सबके निर्मलीकरण में सुविधा होती है।

❀ ❀ ❀ ❀

आपने लिखा है कि सांसारिक चिन्तायें हृदय में भारीपन उत्पन्न करती हैं। यह सिद्ध करता है कि हृदय इतना निर्मल हो गया है कि फूल की मीठी खुशबू भी उससे नहीं सही जाती। फिर भी चिन्तायें उड़ती हुई शक्ल में होनी चाहियें ताकि हृदय को उनका भान न रहे।

❀ ❀ ❀ ❀

श्री क ने मेरे पास तिरुपति में रूपान्तरण करने के लिए तार भेजा जो मुझे इलाहाबाद में मिला। मुझे खेद है कि तार द्वारा मैं उनका रूपान्तरण नहीं कर सका। पर यह निश्चयतः अध्यात्म-पथ में ईश्वर को पाने की उनकी विकलता की सूचना देता है, जो अच्छा है। दो दिन पूर्व मैंने उसका उत्तर दे दिया है और उसमें कुछ तर्क की बातें लिख कर मैंने सूर्य को दीपक दिखाया है। पर भाई, वे बहुत अच्छे आदमी हैं और वे प्यार भी करने लगे हैं। पर प्यारे भाई, मैं करूँ क्या? इस तुच्छ जीव की हड्डियों में जरा भी मज्जा नहीं बची है। सम्भवतः इसी कारण लोगों को मैं अच्छा न लगता होऊं। अब क्या मैं शीशे में अपना चेहरा देखना शुरू करूँ ताकि अपने खुद को देख कर मैं खुश हो लूं? पर मुझे भय है कि यदि मैं ऐसा करूँ तो मुझे अपना बिम्ब उसमें अनुपस्थित मिले, यद्यपि मुझे विश्वास है कि अनस्तित्व में भी कुछ विद्यमान मिल सकता

है। हाँ, यह सचमुच निश्चित है क्योंकि असलियत केवल निषेध में मिलती है।

❀ ❀ ❀ ❀

हमारे महात्माओं और सन्यासियों ने भारत की आर्थिक दशा का ध्यान रखे बिना घी के न जाने कितने टीन अग्नि में हवन कर दिये हैं। वे लगातार दो या तीन महीने तक चौबीसों घण्टे अग्नि में हवन करते रहते हैं। जो भी महात्मा नामवरी चाहता है भारत के धन को आग में हवन करने से शुरू करता है। हर साल हमें ऐसी खबरें मिलती हैं। मुझे दक्षिण भारत की दशा की जानकारी नहीं है। सम्भवतः वहाँ भी यही होता होगा। और जो ऐसा नहीं करते वे जनता को कुण्डलिनी की मृग-मरीचिका में फँसाते हैं। इस सबके बावजूद हमारे महात्माओं से कोई भी एक भी आदमी के हृदय में ज्योति नहीं जगा पाया। हाँ उन्होने वह चीज जरूर भरपूर फूँकी है जो उनके बच्चों के लिए उपयोगी हुई होती और जो दिल और दिमाग के सही निर्माण में सहायक हुई होती। यदि प्राण मात्र की आहुति दे कर श्री रामचन्द्र मिशन एक भी व्यक्ति के अन्दर ज्योति जगा सका है तो यह हजार यज्ञों से अधिक उत्तम कार्य है। यदि आप इस पर गम्भीरतापूर्वक विचार करेंगे तो देखेंगे कि आपने अनेक हृदयों में यह ज्योति जगाई होगी और बहुत से और लोग होंगे जिनमें आप इसे जगा सकते हैं। और आप भी ऐसे ही व्यक्ति थे कि किसी मौके पर लिखे गये मेरे एक

साधारण वाक्य ने आपको इतना प्रभावित किया कि आपके अन्दर की बुझी हुई लौ एक बार फिर जल उठी और वह इतनी चमकदार और तेज हो उठी कि उससे लपक बाहर जाने लगी। आपका प्रारम्भ सही हुआ है। खेत को तैयार तो करना ही पड़ता है, वह तैयार किया जा रहा है। यदि बुझे हुये हृदय ऐसे हृदय के सामने आ जायें, तो भले ही उनकी गरमी तक निकल गई हो, वे फिर भी निश्चयतः पुनः प्रदीप्त हो जायेंगे। आपके कार्य-क्षेत्र का विस्तार आवश्यक है।

❀ ❀ ❀ ❀

प्रकृति जरूर आपसे काम लेगी और काम के लिए आपको जल्द तैयार होना है। आपको काम करना ही पड़ेगा। सीमाओं को थोड़ा ढीला करना पड़ेगा।

❀ ❀ ❀ ❀

जो कोई यहाँ आता है केवल शंका करता जाता है और अपनी योग्यता को इसकी गरमी और ठंडक जाँचने की कसौटी मान कर इसका मूल्यांकन करता रहता है। चूँकि यहाँ न गरमी है न ठंडक, अतः वे अपनी कल्पना से काम लेने लगते हैं और किसी न किसी निष्कर्ष पर पहुँच जाते हैं। चूँकि वे शंकाओं को लिये हुये आते हैं, वही चीज उन्हें अविश्वसनीय निष्कर्षों पर पहुँचाती है। ऐसे कम मिलते हैं जो सच कह सकते हैं, और ऐसे बहुत हैं जो झूठ को सच कह कर बताते हैं।

❀ ❀ ❀ ❀

हर कोई बुद्धिमान आदमियों की बड़ाई करता है। मैं भी वही करता हूँ। कहीं मैंने मजाक में कहा भी है कि ईश्वर भी दुर्बल की सहायता नहीं करता। और दुर्बल वही होता है जिसमें आत्म-विश्वास न हो। अब मैं कहता हूँ कि जो मूर्ख हैं उनके लिए ईश्वर ने एक स्थान सुरक्षित रखा है—वह स्वर्ग है। पापियों और अज्ञानियों के लिए नरक ही स्वर्ग है; बुद्धिमानों के लिए दिव्य स्वर्ग है और निष्कपट निष्पाप लोगों के लिए ब्रह्म-लोक है। मै समझता हूँ कि यह विभाजन ठीक है। यदि मैं इसकी व्याख्या करूँ तो कई पन्नों की जरूरत पड़ेगी। इसलिए व्याख्या करने का काम आप लोगों के लिए छोड़ता हूँ।

❀ ❀ ❀ ❀

मेरा पहेली बुझाने का मन हो रहा है। ईश्वर किससे अधिक प्रेम करता है—उससे जिसने उसे केवल एक बार देखा और फिर उससे दूर रहता है। इस पर एक या दो पंक्ति लिखना चाहता हूँ। हम ईश्वर से कब विलग हुए? जब हमने उद्गम को छोड़ कर यह स्वरूप—मानव शरीर—ग्रहण किया। जब हम इतने बड़े उद्गम से चले और सूक्ष्म तल पर उतरे, जो उससे बहुत नीचे है, तब हमने मूलतत्त्वों के पिंजरे में आश्रय लिया। हमें उसकी याद भी बनाये रखना चाहिए ताकि हम भक्ति के क्षेत्र के अन्दर ही रह सकें और अपनी वर्तमान दशा को, जो मौलिक है, समझ सकें। जिस स्थान पर अभी हम हैं

वह ईश्वरीय गुणों के हिसाब से ईश्वर से कोसों दूर है। इसका अर्थ है आत्मानुभव के बाद भी ईश्वर और मनुष्य (के भेद) का विचार याद रखना चाहिए। संक्षेप में, आत्मानुभव के बाद मानवीय शिष्टाचार को तिलांजलि न दे डालिए।

❀ ❀ ❀ ❀

सच्ची आध्यात्मिकता वास्तव में रंग, गंध और स्वाद से रहित होने में है क्योंकि ईश्वर में इनमें से कुछ भी नहीं है। हमारी पद्धति में अभ्यासी को असलियत तक पहुँचाने का प्रयास किया जाता है। अगर कोई भी रंग बचा रह जाता है तो वहाँ विशुद्धता हो नहीं सकती। आप इन सब बातों को जानते हैं।

❀ ❀ ❀ ❀

फ़ारसी में एक कहावत है: "लैला को मजनूं की आँखों से देखो।" यानी, चूंकि लैला बदशकल लड़की थी, उसे देखने के लिए मजनूं की आँखों की दरकार थी। उसी तरह, यदि हम ईश्वर को देखना चाहते हैं तो वैसी ही उन्माद भरी निगाहों की जरूरत है।

❀ ❀ ❀ ❀

श्रद्धा ही वह अस्तित्व या आधार है जहाँ से परानुभूति का प्रारम्भ होता है। श्रद्धा वह अटूट कड़ी है जो एक बार जुड़ने पर तोड़ी नहीं जा सकती। जिस अभ्यासी में श्रद्धा नहीं होती वह आगे नहीं बढ़ सकता।

❀ ❀ ❀ ❀

नंगी तलवार की बहुत तारीफ की गयी है यद्यपि उसका काम काटना है। पर उसे काम में लेने के लिए दिमाग की जरूरत पड़ती है। ताकि वह दुश्मन पर वार करे, दोस्त या खुद पर नहीं।

❀ ❀ ❀ ❀

जब शिष्य अपने को गुरु में पूर्णतः निमज्जित कर देता है तो गुरु उसे आगे ले जाने के लिए व्याकुल हो जाता है, विशेषतः तब जब शिष्य स्वतः अपने बल पर आगे नहीं बढ़ पाता। मैं एक सवाल का, जो संभवतः हर एक के दिल में उठता है, जवाब दूंगा : "यदि गुरु बका[1] प्रदेश का ही यात्री होता है तो, जरूरत पड़ने पर, उच्चतर क्षेत्र में पहुँच पाना शिष्य के लिए कैसे संभव है?" यदि गुरू मुक्त पुरुष हैं तो शिष्य को उनकी सहातता मिलेगी ही बशर्ते कि शिष्य ने ऐसी दशा प्राप्त कर ली हो जिसके कारण उसकी आवाज गुरु तक पहुँच जाये। गुरु ने जिनको दीक्षा दी है उनकी आवाज उनके पास जल्दी पहुँचती ही है। इसके अतिरिक्त प्रतिनिधि और शिक्षक भी रहते हैं जो शिष्य की जरूरत पूरी करते हैं।

❀ ❀ ❀ ❀

यदि कोई आदमी अपनी गलतियों के लिए पछतावे के साथ आता है और यदि उसकी रुझान अध्यात्म की ओर है, तो

---

१. विलयन उपलब्ध होने के बाद उस स्थिति का भी निषेध कर देने की स्थिति।

उसे प्रवेश दे देना चाहिए पर उसे गलतियाँ फिर न करनी चाहिए। अगर वह अपना ध्यान, अपने पापों के लिए पश्चाताप के साथ, ईश्वर की ओर मोड़ता है तो वह जल्दी ही शुद्ध हो जायेगा। इसमें रोने आदि के साथ पापों के लिए क्षमा प्रार्थना शामिल है। कुरान शरीफ़ (हदीस) में लिखा है, "अगर कोई बंदा माफी के लिए प्रार्थना करता है और रोने लगता है तो मैं शर्मिन्दा हो जाता हूँ और फिर मैं उसे स्वीकार कर लेता हूँ।"

* * * *

हमें ईश्वर के ऐक्य में कोई आस्था नहीं है। हम कुछ तो वातावरण से प्रभावित होते हैं, कुछ संगति से बिगड़ते हैं। पाश्चात्य संस्कृति ने भी किसी हद तक हमें प्रभावित किया है। तब जब हमारा अधःपतन पहिले ही शुरू हो गया तो गलत आध्यात्मिक प्रशिक्षण ने उसे पूरा कर दिया। परिणाम यह हुआ कि हम अध्यात्म से हजारों कोस दूर हो गये।

* * * *

एक ही गलती के लिए आदमी को चार सजा मिलती है—यह कैसे? मनुष्य जटिल जीव है। जब कभी वह अच्छा या बुरा काम करता है, मन सोचता है, हृदय निर्णय करता है और मानस-अंग अपना व्यापार प्रारम्भ करते हैं। इन दोनों में मन और हृदय से मदद की जाती है। जो इन्द्रियाँ क्रियाशील हुईं वे भी दोष भागी हुईं। और चूंकि ये सब शरीर के भाग हैं इसलिए शरीर भी उत्तर-

दायी है। जब कभी हम बुरी बातें सोचते हैं, हम वातावरण में बुरे विचारों का प्रभाव छोड़ते हैं। प्रकृति उसके लिए आत्मा से दंड देगी। अपनी की गयी गलती के हिसाब से बुरा जीवन या नरक मिलता है। उसे नरक में जितना मुनासिब होगा उतना दंड मिलेगा, बाकी इस संसार में जन्म लेकर भोगना होगा। मन ने, जिसे वह काम खराब लगा था, दंड भोगा। उसका प्रभाव बुरा पड़ा और यह हृदय को दंड हुआ। समाज ने भी उसे दुत्कार दिया। उसे नरक मिला क्योंकि उसने वातावरण बिगाड़ दिया था। तीसरा दंड वह था जो शरीर और उसके अंगों को मिला। इस प्रकार जो जो गलती करने में सहायक हुए दण्डित हुये।

"जब मैने महबूबा को देखा तो मेरा मन मचल उठा। क़सूर था आँखों का, छुरी दिल पर चली।"

❀ ❀ ❀ ❀

मेरे गुरुदेव कहा करते थे कि आध्यात्मिक पुरुष को मांस नहीं खाना चाहिए। मैं उसी नीति का अनुसरण करता हूँ। ऐसे संत जरूर हुए हैं जो मांस खाया करते थे। पर मांस खाने से दूर रहना चाहिए।

❀ ❀ ❀ ❀

यदि प्रशिक्षक में अनुशासन की कमी है तो वह काम के योग्य नहीं है। यदि गंभीरतापूर्वक देखा जाय तो प्रशिक्षक का अपमान मेरे गुरुदेव का अपमान है।

जहाँ तक मेरा सवाल है, मैं सदा अपने गुरुदेव के आश्रय में रहा हूँ और मेरे गुरुदेव जिसकी अधीनता में रहने के लिए मुझे आदेश देंगे, मैं उसकी अधीनता स्वीकार कर लूंगा। केवल इस निर्भरता के बल पर मैं ऐसी संकल्प-शक्ति अपने अन्दर विकसित कर सका हूँ—जो केवल मेरे गुरुदेव का प्रसाद है—कि मैं एक क्षण में हजारों व्यक्तियों को आध्यात्मिक प्रशिक्षण के लिए तैयार कर सकता हूँ।

❀ ❀ ❀ ❀

भाई, मैं चमत्कार कहाँ से लाऊँ? मेरा ध्यान कभी उस दिशा में नहीं रहा। जब कभी आप लोग किसी चीज की कामना करेंगे, कोई चमत्कार घटित हो जायेगा। यद्यपि मेरे गुरुदेव ने कहा है कि मुझमें चमत्कार दिखाने की शक्ति है—जिसका मैं पूरी तरह विश्वास करता हूँ—फिर भी उधर मेरी रुझान बिलकुल नहीं होती। दूसरे, केवल सिद्धान्त ही सदा लोगों को आकर्षित कर सकते हैं। ईसा मसीह जीवन भर चमत्कार दिखाते रहे पर उन्हें मुश्किल से दर्जन भर शिष्य मिल सके। उनमें से एक इतना दगाबाज निकला कि उसने चालबाजी से उनको क्रूस पर चढ़वा दिया। उनकी मृत्यु के बाद, उनकी शिक्षाओं ने सारे संसार को आकर्षित किया। एक और चीज जिसने उनको मदद की थी, वह यह थी कि उन दिनों हिन्दू लोग समुद्र-यात्रा को शास्त्र-विरुद्ध समझते थे। एक बात मैं कहना चाहूंगा कि गुरुदेव के अनुग्रह से जो चमत्कार

मैंने किये हैं, उन्हें और किसी ने नहीं किया है। पर जो देख सकते हैं सिर्फ वे ही इसे जानते हैं। और भाई प्रकृति का काम करने में मैं ऐसा करने के लिए बाध्य रहूँगा।

❀ ❀ ❀ ❀

संकल्प और इच्छा समझाने के लिए मुझे विभाजन करने होंगे : (१) शरीर तल (२) मनस्तल (३) अध्यात्म तल । ये इच्छाओं के भेद हैं । इच्छायें अच्छी भी होती हैं, बुरी भी। बुरी इच्छाओं का संबन्ध आवेगों, काम भाव, इत्यादि से होता है। इसी श्रेणी में लालच इत्यादि भी शामिल किये जा सकते हैं । मनस्तल की इच्छाओं में आत्म-विवर्धन, आत्मोन्नति, आत्म-योग्यता इत्यादि का रहस्य छिपा रहता है। जब यह चीजें आध्यात्मिक तल तक पहुँच जाती हैं, तब कर्तव्य का ध्यान आता है और फंदे से छूटने की चिन्ता लगती है। वृत्ति ईश्वर-प्राप्ति की ओर मोड़ दी जाती है। यह वही वृत्ति है जिसका कभी शरीर-तल से सम्बन्ध था। पर चूंकि कर्तव्य-भाव इसमें शामिल है इसलिए इसको इच्छा कहना गलत होगा। संकल्प का सम्बन्ध मनस्तल से है क्योंकि आप मानसिक रूप से, ध्येय को बराबर स्मरण रखते हुए, क्रियाशील होने लगते हैं और यह अन्त तक जारी रहता है। हर क्षेत्र में इसे नया जीवन मिलता जाता है। जिस हद तक यह शुद्ध और सन्देह से रहित होता है, उतनी ही जल्दी उसका प्रभाव होता है। यानी इसकी क्षमता बढ़ती जाती है । अब, इसके कार्य महामाया

नाम के सांसारिक क्षेत्रों में से किसी में भी प्रभावी होते हैं। बाद में यह विशुद्ध मूल रूप में बदल दिया जाता है—वस्तुत: हीरा हो जाता है। इस तल पर पहुँचने पर आदमी के लिए, किसी को एक आध्यात्मिक तल से उठा कर दूसरे में पलक मारते पहुँचा देना बहुत आसान हो जाता है। और जब कोई आदमी ब्रह्मनिष्ठ यानी ब्रह्म में बहुत गहराई से लीन हो जाता है, तब उसका संकल्प अमोघ हो जाता है। पर भाई, संकल्प का यह अंश जो इतना अधिक विकसित होता है, केवल ईश्वरीय कामों में सहायक होता है। यदि कोई आदमी (आपने "अनन्त की ओर" में पढ़ा होगा) शंका की जड़ समाप्त कर देता है तब संकल्प अत्यधिक क्षमतासम्पन्न हो जाता है। पाश्चात्य दर्शन का आधार शंका है जब कि पौर्वात्य दर्शन में उसके लिए कोई स्थान नहीं है। शंका पालना घर में चोर को जगह देना है। भाई, अभ्यास से इन चीजों का स्वतः पता लग जायेगा। विधि ठीक होनी चाहिए और पथप्रदर्शक कुशल। अभ्यासी का ठोसपन हटाना चाहिए और सूक्ष्मतर दशाओं में निवास करते जाना चाहिए।

❀ ❀ ❀ ❀

लोगों को ईश्वर पर भरोसा नहीं है, और मुझे अपने स्वास्थ्य पर भरोसा नहीं है। स्वास्थ्य पर भरोसा न होना दुर्बलता का चिह्न है और ईश्वर पर भरोसा न होना आध्यात्मिक आत्महत्या का चिह्न है। लोग कहते हैं कि फसलें आज-

कल अच्छी नहीं होतीं जिसका अर्थ है कि ईश्वर बुढ्ढा हो गया है और उसे कुछ चीजों का ध्यान नहीं रहता। पर लोग नहीं समझते कि उसके द्वारा दी गयी शक्ति के द्वारा उसी के काम में उन्होंने कितनी गड़बड़ी पैदा कर दी है। क्रियायें अनुपाततः अब भी हो रही हैं। अब, हमारे काम प्रकृति के विपरीत थे और उन्होंने वातावरण में बिगाड़ पैदा किया जिसके कारण हमारा ही गला कटा। अब इन चीजों की सफाई की ज़रूरत है, जो किसी हद तक हो रही है और होती रहेगी। इसे आप ही सब लोगों को करना है और अनजान में हर एक संत कुछ न कुछ करता है। मुझमें साहस है और गुरुदेव की कृपा से किसी चीज की कमी नहीं है। इसे करने में मुझे दूसरा सेकंड नहीं लगेगा। मैंने यह सब इसलिए लिखा है कि आप सब भी अपने अन्दर हिम्मत को बढ़ावा दें। पर मैं स्वयं यह नहीं करता क्योंकि जिन्होंने अपनी शक्तियों के दुरुपयोग से यह सारी गड़बड़ी पैदा की है वे सब अपनी करनी का फल भोग पायें। प्रकृति भी यही बात चाहती है। विनाश का आना अनिवार्य है, वह शुरू भी हो गया है और उसके ये कारण हैं।

❀ ❀ ❀ ❀

मैं आपको एक बात बताता हूँ। पूर्ण आत्म-विश्वास के साथ किया गया कोई भी काम सही होगा बशर्ते कि करने वाले

को इस तथ्य का भान तक न हो कि 'आत्म' शब्द किसका द्योतक है। आपके शब्दों में 'आत्म' पूरी तरह गायब हो जाना चाहिए।

❀ ❀ ❀ ❀

यह देखा जा रहा है कि लोगों को सफाई के सायंकालीन अभ्यास से फायदा नहीं हो रहा है। कारण यह है कि लोग इसे गलत ढंग से करते हैं। अपने केन्द्र के अन्तर्गत सत्संग कराने वाले सभी व्यक्तियों को यह सूचित करिये और जिनसे भी आपकी मुलाकात होती है उन्हें जबानी समझा दीजिये। वास्तव में लोग पहले ठोसपन का ध्यान करने लगते हैं और तब सोचते हैं कि वह धुयें की शकल में पीछे की तरफ से जा रहा है। सही बात तो यह है कि उन्हें इसे वैचारिक सुझाव के माध्यम से उसे धुयें की शकल में, निकाल फेंकना चाहिए।

❀ ❀ ❀ ❀

इस सब का मतलब है कि पूजा के विषय में हमें अपने हृदय पर दबाव पैदा करना चाहिए।

❀ ❀ ❀ ❀

एक शायर ने कितने सुन्दर ढंग से व्यक्त किया है :

गुनहगारों को पूछा जो उसकी रहमत ने,
बहुत खफ़ीफ़ हुये जो गुनहगार न थे।

अपने को पापी समझना दीनता का चिह्न है। पर यह विचार इसलामी है। संभवतः हमारे धर्म में यह बात नहीं कही

गई है। यह तो वास्तव में शराफ़त की बात है। जब हम अपने को पापी समझते हैं तो हमारा हृदय 'उसकी' करुणा को आकर्षित करने लगता है और जब हम उसकी करुणा पर पूरी तरह निर्भर हो जाते हैं तब इस दशा में हम भरपूर लाभान्वित होते हैं। यह आत्म-समर्पण का एक अंग है। जब हम किसी विशाल वस्तु की ओर बढ़ते हैं तो हमें अपनी लघुता का अनुभव होने लगता है—इतना अधिक कि हम उसकी करुणा की ओर देखने लगेंगे और हमारा कोई अस्तित्व नहीं रह जायेगा। इसका अर्थ है कि उसकी करुणा के लिए हम एक रिक्तता का निर्माण करते हैं। यह असलियत के विषय में है जिसे केवल जिज्ञासु जान सकता है।

प्रेम सर्वत्र सराहा जाता है। महाभारत में एक कथा है: जब भगवान कृष्ण विदुर के घर गये, तो विदुर की पत्नी, जो नंगी नहा रही थी, कृष्ण का स्वर सुनकर मारे खुशी के दरवाजा खोल कर बाहर निकल आई। कृष्ण ने अपना उत्तरीय उस पर फेंक कर उसे ढका। वह उन्हें केले खिलाने लगी—पर इस तरह कि छिलके खिला रही थी और गूदा फेंक रही थी। जब विदुर आये और उन्होंने उसे बताया कि वह क्या कर रही थी तब वह होश में आई और उन्हें गूदा खिलाने लगी। तब कृष्ण बोले कि जो स्वाद छिलके में था वह गूदे में नहीं मिला। इसलिए जब प्रेम और भक्ति इस कदर हावी हो जाती हैं तो जो दशा

विदुर की पत्नी की थी उसका अनुभव कम उन्नत अभ्यासियों को भी कभी कभी हो जाता है।

❀ ❀ ❀ ❀

श्री क ने मुझको लिखा है कि मैं चिकमंगलूर जरूर जाऊँ। पर मेरा स्वास्थ्य ऐसी बेमतलब सफर का भार सहने योग्य नहीं है। वे समझते हैं कि मेरे वहाँ जाने से उनको पुण्य मिलेगा, पर पुण्य तो रक्अत से मिलेगा, जिसका मतलब आप जानते हैं। संक्षेप में, पुण्य मिलता है प्रार्थना और भक्ति द्वारा।

❀ ❀ ❀ ❀

मैं अपने खाली समय में सोच रहा था कि कितना अच्छा होता यदि किसी तरह ऐसा तरीका मालूम होता जिससे मनुष्य अपनी पाशवीय वृत्तियाँ छोड़ कर सच्चे अर्थ में मनुष्य बन जाय। जब मैंने अपने अन्दर और सृष्टि के अन्दर भी अच्छी तरह देखा, तब मैंने दो डाइनेमो देखे—एक व्यष्टिगत सृष्टि का डाइनेमो, दूसरा सम्पूर्ण सृष्टि का डाइनेमो। अभी मैंने दूसरे डाइनेमो को हाथ नहीं लगाया है क्योंकि मुझे पता है कि केवल विशिष्ट व्यक्ति के पास ही इसके उपयोग की शक्ति है। यह भय भी रहता है कि हर साधारण महात्मा इसकी बात सोच तक नहीं सकता। इस समय हमारे मिशन में दो या तीन ऐसे व्यक्ति हैं जो इसका उपयोग कर सकते हैं। पर इस मामले में मैं उन्हें कोई गुर नहीं बता सकता क्योंकि वहीं स्थित रहने के

लिए मुझे उन्हें विशेष शक्ति देनी है, जिससे यह जीवन जाकर उस (जीवन) में मिल न जाये।

अब मैं व्यक्तिगत सृष्टि के डाइनेमो की बात करता हूँ। यह (पहेली) मैं अपने गुरुदेव के अनुग्रह से सुलझा सका हूँ। उन्होने एक हल बताया है जो बहुत अच्छा है और जो कुछ मैंने इस पर सोचा है वह भी सही है। मेरे गुरुदेव ने भी इसे मान लिया है। इस हल में कोई खतरा नहीं है। यह बहुत कारगर औज़ार है। प्रयोगकर्ता को बहुत सजग रहना पड़ता है। मैने निरीक्षण के लिए दो मामले लिए हैं। पर यह देखना है कि क्या केवल एक प्रयोग पूरे जीवन-काल में काफी होगा या कुछ अन्तराल के बाद उसे कई बार करना आवश्यक होगा। जिनको मैंने प्राणाहुति दी है उनमें बदलाव के चिह्न तो दिख रहे हैं पर यह कैसा बदलाव होगा यह तो उसके सामने आने पर ही पता लगेगा। इस प्रक्रिया को 'नाभिकीय (न्यूक्लीयर) विधि' कह सकते हैं।

❀ ❀ ❀ ❀

यदि हर सत्संगी को मिशन अपना लगे तो जिन कठिनाइयों का मिशन अभी सामना कर रहा है वे खतम हो सकती हैं। जब हमें अपने बच्चे अपने खुद के लगते हैं तब हम उनके आराम के लिए कोई भी कष्ट झेलने के लिए तैयार रहते हैं।

❀ ❀ ❀ ❀

मुझे आपसे बहुत काम लेना है और आप पर बहुत काम करना भी है। इस तरह लेना और देना दोनों शामिल हैं।

अंग्रेजी में एक उक्ति है, "आदान-प्रदान में कोई चोरी नहीं है।" अपने खाली समय में आप ईश्वर का स्मरण करते होंगे। आप जैसे जैसे आगे बढ़ियेगा, आपको लगेगा कि कुछ परिवर्तन हो रहे हैं। अभी हाल में मैंने इसकी शुरुआत भर की है। मैं आशा करता हूँ कि भविष्य में यह आपकी जानकारी में आयेगा। इसके लिए आपको अन्तरिक्ष में काम करने के लिए तैयार करना पड़ेगा। ऐसा होता है कि अभ्यासी ध्यान में कभी लीन हो जाता है, कभी नहीं होता। कारण यह है कि संस्कार जो अपने क्षेत्र में मूलबद्ध पड़े रहते हैं वे बाहर निकलने के लिए हृदय की तरफ आते हैं। यह इसलिए होता है कि ध्यान हृदय में एक रिक्तता उत्पन्न करता है। जब तक सारे संस्कार नहीं निकाल बाहर किये जाते, मुक्ति नहीं हो सकती। सच तो यह है कि नित्यक्रम में भी मैं उनकी सफाई करता रहता हूँ। सहजमार्ग पत्रिका में कहीं मैंने इस विषय पर एक लेख लिखा है।

ध्यान काल में जो भी दशा पैदा होती है वह हर तरह अभ्यासी के लिए हितकारिणी होती है, चाहे उसे अच्छी लगे चाहे अच्छी न लगे।

अध्यात्म बहुत आसान बात है और इसकी प्राप्ति में अधिक समय नहीं लगता। अभ्यासी को केवल श्रद्धा और भक्ति बढ़ाना चाहिए। और भक्ति बार बार स्मरण करने से पैदा होती है।

• •